कलापी

क ला पी

श्रीआरसीप्रसादसिंह

कलापी

श्रीआरसीप्रसादसिंह

पटना
ग्रंथमाला कार्यालय

प्रथम पंक्ति

(वर्णमाला के अनुक्रम से)

१. अरे कौन तुम अन्ध-सुरापी	९०	पटने के गोलघर से
२. आई इतनी दूर कहाँ से	२९	अमृत-लता
३. आज, नव मधु का प्रात	५२	वसन्त-विलास
४. आज, बाँधी नहीं कवरी	१४९	अप्रस्तुता
५. आज श्रावन घन घिरे फिर	१	कलापी
६. आज, शरद हो रहा तरंगित	९७	शरद्-मिलन

७. आज, सवनाश के	१७७	रक्तपर्व
८. आज, हुआ दिनमान तुम्हारा	११२	कवि की मृत्यु
९. आदि-शक्ति-रूपा-जननी तुम	१३७	नारी
१०. उड़ चला तो; पर कहाँ	८३	अनाश्रित विहङ्गम
११. कल खिली थी कामिनी	१७८	क्षणिका
१२. किस प्रेम-देवता से	१३२	बुलबुल
१३. कोलाहल से दूर विश्व के	१४३	तापसी
१४. छिन्न कुसुमों की बनी यह माल	१६	छिन्न माल
१५. तितली, तितली ! कहाँ चली हो	१०२	तितली
१६. नील गगन का उत्पल	×	×
१७. पश्चिम-पयोधि-तट पर	१०	सांध्य-गीत
१८. प्रेम-देव-निवेदिता	१०९	नीराजन
१९. प्रेयसी मेरी जो अज्ञात	×	×
२०. मेघ-नगर-निवासिनी	५४	सजला
२१. मौन ! मौन क्यों आज नियति की	७३	पाषाणी
२२. री सजनि, सुन, तू अभी नादान	७९	जुही की कली
२३. व्योम उर मेरा विपुल, तुम	१५६	पूर्णिमा
२४. श्याम-सम सुकुमार; तुम	३६	श्याम मरण
२५. शुक्ल नवेन्दु-लेखा क	२०	नटराज
२६. सुन्दरता अभिशाप विश्व का	४५	उल्लास
२७. हम दोनों में कितना अन्तर	१६६	विभेद

प्रेयसी मेरी जो अज्ञात—

विमल ज्योत्स्ना-सी, मृदु-मृदु गात ;
कल्पना-सी अवदात !
कौमुदी-वन में खिलकर रात,
आप ही मुरझा जाती प्रात !

रजत के अश्रु,
स्वर्ण का हास;
दिवा में दूर,
स्वप्न में पास!

अपरिचित - सी परिचित, सविलास;
रूप-श्री, मलयज-वन का श्वास!
दृगों में कोमलाभ आकाश,
रश्मि-सुकुमार, अकूल विकास!

आज मुझको अनन्त अवकाश;
आज, रे पावन पावस - मास!

प्रयसी मेरी जो अज्ञात,

सरसि में छवि की सद्यः - स्नात,
फुल्ल नीरज - से प्राण;

उसीके मानस - वन में मुग्ध,
सरल मेरे शिशु का संगीत:
करे यह बाल - कलापी नृत्य!

काशी
२०, सितंबर, ३८

भूमिका

इस पुस्तक में, आवश्यकतानुसार, कतिपय शब्दों के रूप-परि-वर्तन में, मैंने अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग किया है; यद्यपि, साहित्य के इतिहास में मेरा यह अपराध एकदम नवीन नहीं। यथा, 'ण' के स्थान पर 'न' और 'व' के स्थान पर 'ब'।

उच्चारण की दृष्टि से, शब्द के अन्तिम 'हलन्त' वर्ण को 'अकारान्त' कर दिया गया है।

विराम-चिह्नों का व्यवहार भी मैंने अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से ही किया है।

और, सर्वत्र, जहाँ जिसकी आवश्यकता पड़ी, उसके प्रयोग में मैंने अपनी निरंकुश स्वतंत्रता का परिचय दिया है।

मैं समझता हूँ, मेरे बचपन की इस तुतली चेष्टा ने स्वरों में कोमलता और पदों में लालित्य ही नहीं दिया; भावनाओं को एक सुगम-सरल माधुर्य्य भी प्रदान किया, जो यों प्रतिकूल परिस्थितियों में शायद अपूर्ण ही रह जातीं!

किन्तु, उन्हीं स्थलों पर, जहाँ इस नवीन प्रयास से कविता की भाषा और भावों में सौन्दर्य की वृद्धि हुई। अन्यथा, मैं अपने स्वभाव से किसी विशेष नियम के बन्धन में नहीं। रस और भाव के अनुकूल, जिन स्थानों पर इसकी आवश्यकता हुई; मैंने तत्काल वहाँ इच्छित परिवर्तन कर दिया।

और, ऐसे स्थल मेरे मर्मज्ञ वाचकों से छिपे नहीं। मैं स्वयं अपनी उँगलियों से इन्हें इंगित कर अपने सहृदय रसिकों की काव्य-कुशलता का उपहास करना नहीं चाहता। अवलोकन करते समय ये स्थल पाठकों के सम्मुख आप ही आते जायँगे।

अशुद्धियों पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। और, सम्पूर्ण पुस्तक की ऐसी कोई भी त्रुटि नहीं, जो रचयिता की अज्ञानता में की गई हो।

और, अपनी जान-बूझकर की हुई गलतियों के लिये मेरे कवि को इतना साहस है कि वह क्षमा की प्रार्थना न करे।

क्योंकि, मैं जानता हूँ कि मैं क्या हूँ। और, इस तरह अपने आप को पहचानने में मुझसे कभी भूल नहीं हुई।

बस, इतनी सी कैफियत देने के बाद अगर मैं चुप रह सकूँ, तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं रह जाता।

काशी
२३, सितम्बर, ३८

श्रीआरसीप्रसादसिंह

कवि

नील गगन का उत्पल ;
जिसमें मेघों के शत - शत दल ;
रक्त - पीत - कज्जल !
खिल, मुरझा, हिल ,
अनमिल ;
छबि के छाया - वन में निर्मल ,
प्रतिक्षण, प्रतिपल ;
किस अज्ञात - स्पर्श से कोमल ,
चंचल !

कल - कल, छल - छल ;
सजल आज मेरा अन्तस्तल !
लघु - लघु, मृदु - मृदु ,
बह - बह आते श्रोत हृदय से
अधरों पर अविकल ;
रस की लहरी, धारा गहरी ;
झलमल, झलमल !

सान्द्र, सजल घन !
अम्बर में करते गर्जन ;
उमड़ - उमड़, घिर - घिर ,
व्याकुल, अस्थिर ;
दिग्दिगन्त में फिर - फिर !
कम्पित कण - कण ;
जीर्ण - पुरातन !

डोल रही भावों की नइया ;
चला पवन पुरवइया !
उर - उर में ,
भवन - भवन में, अभिनव
कलरव, कलरव;
हिलते तरुओं के पल्लव !
पुलकित मन्दिर - शिखर,
शैल - वन ;
पत्र - पत्र में मर्मर !
गृह - गृह में वधुओं का उत्सव ;
कौतुक, कौतूहल !
किसलय - किसलय पर
कोकिल-स्वर !

सिहर-सिहर
सर-सर, मर-मर;
मन्द - समीरन
शीतल से शीतल - तर !
मधुर-मधुर
मेरे अंग - अंग में यौवन
प्रचुर-प्रचुर
सरस वारि - सीकर
लाता परिमल की अंजलि में
भर-भर, थर-थर;
लहर-लहर

मेरा जीवन,
इन्द्र-धनुष का कानन;
सातो रंग घुले प्राणों में
उन्मद, उन्मन !
सुमनों का आकर्षन;
कुंज-कुंज में शिलीमुखों का
पुंज - पुंज गुंजन !

जग - जीवन का मानस - सर;
निकल रहा जल से तज सम-तल
उर का इन्दीवर
सुन्दर !
फैल रहा सौरभ ;
दिशि अवाक, अपलक, अनन्त
विस्मय से नीरव भू - नभ !

निरख व्योम में बादल,
मेरी काव्य - प्रिया ने भी है
किया दृगों में काजल;
अलकों में मणि - बन्धन ;
आनन पर अवगुंठन !
कुसुमों से भूषित तन ;
चरणों में बजता मृदु नूपुर,
कर - मृणाल में कंकन !
शोभन, चिर-शोभन;
प्रथम बार जीवन में देखा,
आज मुकुर में आनन;

नयनों का वातायन
मुक्त; वीथि में किन्नरियों का गायन !
प्राण, अभी फूटा कोरक;
उड़ती गन्ध-लुब्ध, यौवन पर,
विद्युत की तितलियाँ चपल;

अरुण-अरुण
लज्जा से युवती के कपोल कल
करुण-करुण
रोमांच - मुकुल से वक्षस्थल
तरुण - तरुण

घिर आये फिर,
उर में घन;
सावन - सा मेरा मन !
होता आज, मुग्ध वन - वन में
विकल कलापी का नर्तन;
यह प्रिय - दर्शन !

काशी
२१, सितम्बर, ३८

शीर्षक

[कालक्रम के अनुसार]

१. छिन्न माल	१६	३, दिसम्बर, ३०
२. जुही की कली	७९	४, दिसम्बर, ३०
३. नटराज	२०	१५, अक्तूबर, ३१
४. तितली	१०२	१३, फरवरी, ३३
५. तापसी	१४३	१६, जुलाई, ३५
६. अमृत-लता	२९	१०, जनवरी, ३८

७. रक्तपर्व — १७७ — १५, जनवरी, ३४

८. वसन्त-विलास — ५५ — १४, मार्च, ३४

९. बुलबुल — १३२ — १९, अप्रैल, ३४

१०. पाषाणी — ७३ — २८, अप्रैल, ३४

११. नारी — १३७ — १५, जून, ३४

१२. पटने के गोलघर से — ९० — १०, नवम्बर, ३४

१३. सांध्य-गीत — १० — ४, मई, ३५

१४. कलापी — १ — २४, जुलाई, ३५

१५. अप्रस्तुता — १४९ — २३, अगस्त, ३५

१६. शरद-मिलन — ९७ — २३, सितम्बर, ३५

१७. उल्लास — ४५ — १६, अक्तूबर, ३५

१८. पूर्णिमा — १५५ — १, अक्तूबर, ३६

१९. अनाश्रित विहङ्गम — ८३ — २५, अक्तूबर, ३६

२०. कवि की मृत्यु — ११२ — ५, फरवरी, ३७

२१. विभेद — १६६ — १२, फरवरी, ३७

२२. क्षणिका — १७५ — १०, अगस्त, ३७

२३. नीराजन — १०९ — ११, अगस्त, ३७

२४. सजला — ५४ — ८, अक्तूबर, ३७

२५. श्याम मरण — ३६ — २५, फरवरी, ३८

कलापी

कलापी

आज श्रावन-घन घिरे फिर,
नृत्य कर मेरे कलापी!
सरस वर्षासार से लो,
खिल उठे वेशन्त-वापी!
उमड़ आई अभ्र-पथ में
पुनः पावस-जलद - माला;
धो चली जल-धार युग-युग की
धरा की विरह-ज्वाला!

व्योम ने सुरचाप से मेरे
हृदय की परिधि मापी;
आज श्रावन-घन घिरे फिर,
नृत्य कर मेरे कलापी!

कूकती सहकार-वन में
कोकिला मधुमास - वाली:
उड़ गई जैसे क्षितिज के
पास से कोई मराली!
आज, कलरव कर रहा
नभ में मिलन-व्याकुल वलाका:
यह जगत के मंच पर ज्यों
पंचशर की जय-पताका!

डालियाँ भर गन्ध से
उन्मद बना पवमान-माली;
कूकती सहकार - वन में
कोकिला मधुमास - वाली!

ध्यान किस अलका - परी का
कर रहा मुझको विचंचल?
किस सुहासिनि ने दिया
फैला गगन में नील-अंचल?
गिरि-शिखर पर, हर्म्य-तल पर
स्नेह यह उमड़ा किसीका;

स्वर्ग से रथ-चक्र निकला
कौन - सी सुर-किन्नरी का ?
खुल पड़ा किस सुन्दरी का
आज सहसा कृष्ण कुन्तल ?
ध्यान किस अलका - परी का
कर रहा मुझको विचंचल ?

किस वियोगी के दृगों की
यह अनाविल वारि-धारा ?
तोड़ती मेरे हृदय की प्रिय,
कठिन पाषाण - कारा !
लग गये झूले कदम्बों में,
जगे नव - गीत - वन्दन !
करुण-स्वर से हाय, फिर भी
कर रहा यह कौन क्रन्दन ?
बोल दे केकी अरे, तू
ही कहाँ प्रिय का किनारा ?
किस वियोगी के दृगों की
यह अनाविल वारि-धारा ?

छा रहे मेरे गगन में भी
सजीले श्याम - जलधर;
आज रिमझिम कर रहीं
रस-बूँदियाँ सुकुमार-सुन्दर !
नाच रे मेरे शिखी तू,
प्रेम का संकेत आया !
स्पर्श यह शीतल किसीका,
बादलों की स्निग्ध छाया !

नाच ले उर-कुञ्ज में भावुक,
चपल-गति-मत्त पल भर;
छा रहे मेरे गगन में भी
सजीले श्याम - जलधर !

हाय, मेरे प्राण - वन में
यक्षिणी यह कौन रोती ?
खोजती आश्रय दृगों में
कौन यह कातर कपोती ?
आज, श्यामा के दृगों की
फूट निकली विधुर पीड़ा !

वासना उमड़ी युगों की
संचिता परिणय-अधीरा !
विरहिणी - सी मधुर - स्मृति
किसकी सिसकती, विकल होती ?
हाय, मेरे प्राण - वन में
यक्षिणी यह कौन रोती ?

प्रिय, कहाँ तेरे लिये मैं
मधुर पिक का कंठ पाऊँ ?
विश्व का उपहास सहकर
मेंहदी कैसे लगाऊँ ?
आज तो इस कर्कशा पर
ही लुटेगी विश्व - वाणी !
कर्ण-कटु ध्वनि आज तेरी
ही बनेगी राज - रानी !
हाय, किस युग की कहानी
मैं तुझे रो - रो सुनाऊँ ?
प्रिय, कहाँ तेरे लिये मैं
मधुर-पिक का कंठ पाऊँ ?

प्रेम आया था किसी दिन
नाश का सन्देश लेकर;
विश्व की अनुभूति ली
मैंने सकल भव-भूति देकर!
अश्रु ही इतिहास जग का,
वेदना सर्वस्व - जीवन;
बह चला विरही हृदय को
चीर कर पावस-समीरन!
उदधि झंझाकुल, तरी लघु;
पार जा सकता न खेकर!
प्रेम आया था किसी दिन
नाश का सन्देश लेकर!

हाय, नूतन हो उठी फिर
माधवी की चिर-दुराशा!
चातकी के दग्ध प्राणों में
जगी स्वाती - पिपासा!
अनिल जल-सीकर-विनत
आ खोल देता द्वार मेरा;

गूँजता भू से गगन तक
विकल - हाहाकार मेरा !
हो गया पल्लव - रहित
दुर्भाग्य से अन्तर-जवासा !
हाय, नूतन हो उठी फिर
माधवी की चिर-दुराशा !

सो रहा संसार, मेरे
जागते पर प्राण पापी;
कम्बु-ध्वनि करता गगन में
कौन वह दुर्जय सुरापी ?
चकित कर जाती निमिप में
चमक चपला तडित-बाला !
तिर रहा लोचन-सलिल में
रूप यह किसका निराला ?
सो रहा संसार, मेरे
जागते पर प्राण पापी;
आज श्रावन-घन घिरे फिर,
नृत्य कर तू हे कलापी !

चिर-दिनों पर आज पहुँचा
है यहाँ पावस-प्रवासी !
हाय, मैं कैसे रहूँ इस
शून्य मन्दिर में उदासी ?
द्वार पर रख दे तनिक तू
सांध्य-घृत-दीपक जलाकर !
कौन अपने को न माने
धन्य ऐसा अतिथि पाकर ?

धूलि-धूसर पंकिला भू पर
उतर अम्बर - निवासी
चिर दिनों पर आज आ
पहुँचा यहाँ पावस प्रवासी !

देख ले वनराजि तेरी
आज चंचल नृत्य-लीला;
भग्न हो सुख-स्वप्न, जीवन-
देवता की निशि - प्रमीला !
आ गया मैं भी प्रणय के
राज में प्रिय, आज रोने;

वेदना मेरी अमा के
तिमिर से लिख दे सलोने !
आँसुओं से आज शाद्वल का
हृदय हो जाय गीला;
देख ले वनराजि तेरी
लास-चंचल नृत्य - लीला !

नाच तू मेरे शिखी, गिरि-
मल्लिका मुरली बजाती !
काकली सुन कामिनी की
किंकिणी-कलना लजाती !
भूमि नाचे, व्योम नाचे;
नाच लें नक्षत्र - तारे !
आज तेरे संग नाचें
चर-अचर द्रुम-पत्र सारे !
एक क्षण लूँ नाच मैं भी,
दिग्वधू मल्लार गाती !
नाच तू मानस-शिखी, गिरि-
मल्लिका मुरली बजाती !

२४, जुलाई, ३५]

सांध्य-गीत

पश्चिम-पयोधि-तट पर शीला-सुलक्षिणी-सी
तू कौन झाँकती है ?
आकाश - चित्रपट पर छवि - दक्ष यक्षिणी - सी
मुख - रेख आँकती है !
वह कौन विप्रयोगी सखि, रामगिरि - प्रवासी
किसका विरह-निवेदन ?
अभिशाप - दण्ड - भोगी किस रूप का उदासी
करती चरित्र - चिन्तन ?

किसके किशोर-उर पर होगी प्रिये, सुशोभित
बन पारिजात - माला ?
वह कौन सौम्य-सुन्दर जिस पर विमुग्ध-लोभित
तू आज इन्द्र-बाला ?
किसके अपार भय से उठती सहम विवर्तन
कल तूलिका तुम्हारी ?
विस्मय-विकल हृदय से करता विनोद-नर्तन
पाथोद-वन-विहारी !

जल - जालमार्ग - द्वारा अब माँगती बिदाई
गोधूलि धूमवसना ;
घन - पक्ष खोल प्यारा सन्ध्या प्रसन्न आई
मणि-बन्ध, गन्ध-रशना !
कल - मन्त्र - स्वर - तरङ्गित कङ्कण-क्वणित जलाशय
सागर, क्षितिज, हिमानी;
भावानुभाव - भङ्गित नूपुर - रणित महालय
गिरि - मेखला वनानी !

तू पुष्प वह सिरिस का जिसमें न वृन्त-पल्लव
केवल अनन्त सौरभ;
जग इन्द्रजाल किसका खग - बाल - वृन्द - कलरव-
कूजित सकल दिशा-नभ !
यह कण्व का तपोवन मङ्गल - कलश उठाकर
कटि पर चली कहाँ तू ?
मोहित त्रिलोक का मन; जागे न पत्र-मर्मर
चल मृदु-चरण यहाँ तू !

मैं पुरुरवा मदालस उन्मत्त उर्वशी - सी
उर में सजनि, बसी तू ;
दिल की हँसी छिपा, बस: मत फेंक आरसी - सी
प्रतिविम्ब प्रेयसी तू !
कच-दाम एक वेणी यह मेरु - मालिकावलि
किसका बनी बसेरा ?
ओ स्वर्ग की निसेनी, सन्ध्या-सुमन-कृताञ्जलि
प्रेमी प्रमत्त तेरा !

लिखती शिखर-ध्वजोपरि नख से सलज्ज-आनन
किसकी प्रणय-कथा, कह ?
अयि मौन - मग्न सुन्दरि, निस्तब्ध शैल-कानन;
कैसी विचित्र लिपि वह ?
अलि, अस्तप्राय रवि की यों आरती सजाकर
किसकी उतारती तू ?
अपनी अनन्त छबि की कल लीक में लजाकर
छिप जा न आप ही तू !

रजनी—निशीथ, रजनी वासर—दिनान्त, वासर
आ एक-एक जाता;
सजनी, परन्तु सजनी, मेरा विषाद अक्षर
पथ का न अन्त पाता!
गाता विषण्ण मन से सङ्गीत वेदना का;
मूर्च्छा - निधूम काया;
जिस सर्वनाश-क्षण से सौन्दर्य शोभना का
उर में विधुर समाया!

जब-जब प्रिये, उमड़ता पीड़ा - पयोद दारुण
मधु - प्राण में, प्रचञ्चल;
छाया प्रशान्त करता तब-तब समोद - सकरुण
तेरा प्रदोप - अञ्चल!
उठता गगन-क्षितिज पर ज्यों ही विहंग-कलरव
अतिशय-अशेप अतिशय;
पाता तुरन्त अन्तर मेरा विषाक्त विद्रव
त्यों ही रसार्द्र आश्रय!

गाते अनेक राही इस राह से विजन की
मैं सिन्धु-वीचि-विह्वल ;
यह दुःख वह्नि-दाही; स्मृति किन्तु प्राणधन की
कोमल—असीम कोमल!
मग में पड़ा अकेला मैं बावला - विरागी;
कल्लोल अश्रु–धारा !
टूटी सितार - वीणा वह बाँसुरी अभागी ;
क्यों मूक विश्व सारा ?

जाता मिलिन्द देकर अन्तिम अधीर चुम्बन
लोहित-नयन कुसुम को ;
क्रन्दन - विनीत कातर आरक्त पद्म - लोचन
सखि, कौन शोक तुमको ?
प्रिय—दूर, क्या इसीसे मिलता नहीं सहारा ?
हिय की सजल कहानी;
अलि, पूछ भी किसीसे, वह कौन रूप प्यारा ?
इतनी न बन दिवानी !

नभ-दोल से लटककर थी झूलती झमककर
तू तो अभी निगोड़ी !
भागी कहाँ, पटककर क्षण में अरी, चमककर
कुंकुम - भरी कटोरी !
छलना—कठोर छलना, इस ओर देख, रुक तो
रुक तो—जरा ठहर जा ;
सीखा कहाँ मचलना ? आली भली न; टुक तो
यह प्रेम-पात्र भर जा !

आ सखि, उतर मृदुल-पद हे मन्द-मन्द चारिणि,
इस सार-हीन जग में :
दे बाँध आज उन्मद नव-इन्दु - विन्दु - धारिणि
कुन्तल-कलाप नग में !
सुकुमारि, तू प्रणय में सीमन्तिनी – सुरूपी
छाया - प्रसन्न नारी :
निशि-दिन बसो हृदय में हे मोहिनी उलूपी,
चिर - यौवना कुमारी !

४, मई, ३५]

छिन्न माल

छिन्न कुसुमों की बनी यह माल—
कौन लेगा? किस रसिक के दूँ गले में डाल?
छिन्न कुसुमों की भला यह माल!

ले गई थी समुद इसको आज मैं बाजार,
पर न लेने को इसे कोई हुआ तैयार!
प्रात से सन्ध्या हुई, सब ओर टक्कर मार,
लौट आई अन्त में मैं हारकर लाचार!
आ किसीने पर न पूछा हाय मेरा हाल!
छिन्न कुसुमों की पड़ी यह माल!

मंजु ऊपा की अरुणिमा फैलते ही नित्य,
जब किया करतीं धरा पर बाल-किरणें नृत्य;
हँस नवल कलियाँ लुटातीं मधु-मरन्द-पराग,
अनिल मृदुपद आ उठाता—जाग, प्यारी जाग !
जा पहुँचती दौड़कर मैं बाग में तत्काल
छिन्न कुसुमों की बनाने माल !

कपि-सदृश शेफालिका-तरु को दिया झकझोर :
वृन्त तज झर झर पड़े मुठि सुमन चारो ओर !
क्षिप्रता से भर स्व-अंचल में उन्हें सोल्लास
बावली-सी दौड़ जाती बावली के पास।
औ' मसल कर से उन्हें रँग आप अपने गाल
छिन्न कुसुमों की बनाती माल !

लड़-झगड़ मृदु-तन्तुओं से, गात कोमल भेद,
क्रूर बनकर मैं किया करती कुसुम में छेद;
पद्मनलिका की शिराओं की बना कृश डोर
गूँथ देती थी परस्पर जोड़ दोनों छोर !
खेलता जिनसे कभी मधुमत्त मधुकर-बाल !
छिन्न कुसुमों की वही यह माल !

रो रही है मलिन-मन यह मालिका इस ओर;
टूटकर रज में मिली उस ओर इसकी डोर !
धूल में बिखरे पड़े हैं हाय ! कोमल फूल;
यह उपेक्षा, देखता कोई न इनको भूल !
मैं समझकर भी न समझी क्रूर जग की चाल !
छिन्न कुसुमों की बनाई माल !

विश्व के बाजार में क्या कुछ न इसका मोल ?
पूछता कोई रसिक तो—'दाम क्या है, बोल ?'
दाम की क्या ? दाम देती मैं उसी पर छोड़;
जा रहे थे लोग रूठे-से उधर मुँह मोड़ !
ले न लेते, जाँच तो लेते हमारा माल;
छिन्न कुसुमों की कला—यह माल !

माल कर में, पैर निश्चल, दीन दृष्टि मदीय;
और ग्राहक की प्रतीक्षा, वह दशा दयनीय !
ढूँढ़ती कोई यथा हो वर लिये वर-माल्य;
पर न कोई हेरता हो समझ शिव-निर्माल्य !
सूखकर पीली हुई तज रूप-रंग-रसाल;
छिन्न कुसुमों की मृदुल यह माल !

हो विलग निज बन्धुओं से, धूल में मिल दीन
हो रहे हैं रूप-रस से हीन अतिशय क्षीण !
जो कभी होते सुभग शुचि देव-शिर-शृंगार,
रो रहे क्षण देख जीवन के वही दो-चार !
एक-सा किसका जगत में रह सका है काल ?
छिन्न कुसुमों की भला फिर माल !

क्या हुआ पाया नहीं इसने जगत का प्यार,
मैं स्वयं दूँगी इसे नयनाश्रु का उपहार;
कोकिलाओ ! बुलबुलो ! बस, अब न गाओ और;
मधुकरो ! गुंजार के हित और ढूँढ़ो ठौर।
हाँ, भिगो लेने मुझे दो आँसुओं से गाल—
छिन्न कुसुमों की पहन कर माल !

लक्षपति, तेरे विभव को शताधिक धिक्कार;
जो न शोभित कर सका तेरा हृदय यह हार !
तरुच्छाया में दृगों से बहा जल की धार,
आज मुझको तनिक धोने दो स्वयं उर-भार !
हो गया मालूम, निश्चय निःस्व यह भव-जाल !
छिन्न कुसुमों की बनी यह माल।

३, दिसम्बर, ३०]

———

नटराज

शुक्ला नवेन्दु-लेखा के
कल रथ पर चढ़ दीवानी
है उतर रही मन्थर-गति
अम्बर से रजनी-रानी !

शीतल समीर के झोंकों में
किसलय-दल का कम्पन
निर्जन अरण्य-वीथी में
करता आलस्य-विकीरण !

मधु-मदिर तिमिर-श्वासों की
शय्या पर श्रान्त पथी-सा
निस्पन्द थका सोया है
शिशु-स्वप्न-जगत विटपी-सा!

पथ-भ्रमित चकित दूरागत
वन-विहग-वृन्द का क्रन्दन
धूमिल चक्रार्द्ध-क्षितिज में
बढ़ता ही जाता क्षण-क्षण!

पर खोल जलद के झिलमिल
नीलाभ उदधि के तीरे
उड़ रही सशंकित मन से
छाया-छबि धीरे-धीरे!

शशि-श्वेत करों में लेकर
नीहार-हार वरमाला
दृग बन्द किये बैठी है
सुकुमार हिमानी-बाला!

मृदु अन्तराल से पेलव
पल्लव के उझक उझककर
है झाँक रही उन्मदना-
सी प्रकृति-परी गिरिवर पर !

निर्झर झड़ बहा रहे हैं
सौन्दर्य-सुधा की धारा;
प्रिय - पाण्डु - चूर्ण-वर्षा में
हँस रहा धरातल सारा !

× × ×
× ×
× × ×
× ×

सहसा यह कैसी ज्वाला
प्राची में पड़ी दिखाई ?
तम - तोम - महातोयधि में
किसने यह आग लगाई ?

झुलसा जाता है जिसकी
ज्वाला में जग पत्रों-सा !
हो गया क्षीण चन्द्रानन
ऊषा के नक्षत्रों - सा !

विकराल ज्वाल जलती है
आग्नेय दृगों पर शंकित;
उद्ग्रीव भाल पर जिसके
सुस्पष्ट प्रलय है अंकित !

दुस्तर दिगन्त - सीमा पर
चंचल - पद - चिह्नित लेखा
है खींच रही लपटों में
मानो धूमाञ्जन - रेखा !

आताम्र ज्योति की किरणें
लोहित ललाट पर फैलीं ;
हैं सिखा रहीं अम्बर को
रक्तिम विनाश की शैली।

हैं लेलिहान लक्षावधि
उद्दीप्त देह से लिपटे;
पावक - पर्वत में जैसे
काले बादल हों चिपटे !

सुन वासुकि की फणियों का
अन्तक स्वर घर्घर खर-तर
है काँप रही भय से यह
जगती - कपोतिनी थर - थर !

विध्वंस - राग प्राणों में
आतङ्क मचा है जाता;
पाताल हिला देता है
गुरु चरण-चाप मदमाता।

उद्रिक्त भाव - भङ्गी से
वंकिम कटाक्ष - निक्षेपण
कण-कण में भर देता है
लघु-दीप-शिखा का सिहरन।

कुसुमित कदम्ब-कानन में
मच गया भीम आन्दोलन;
अलि भाग चले तज शिथिली-
कृत कलियों का परिरम्भन !

चीत्कार उठी कर कोयल
यूथी - कुंजों में विह्वल;
चू पड़े केतकी - तरु से
जल छल-छल करके अविरल !

कम्पित मेखला-वदन पर
खिंच गई मृत्यु की छाया;
खिल उठी शरद्-सरसिज-सी
द्रुत सर्वनाश की काया !

अचिरागत प्रलय-निशा में
गा-गा कर विप्लव-लोरी
आई त्रैलोक्य सुलाने
रे माया नटी किशोरी !

विस्तब्ध अब्धि-मन्दिर में
जागी वडवाग्नि कराली;
दुन्दुभि-निनाद-स्वर-निन्दित
दी काली ने करताली!

द्रुत खेल गई द्रोही के
मुख पर मुस्कान निराली;
दौड़ी क्षुधार्त्त चण्डी ले
मरघट में खप्पड़ खाली!

विस्फोटक त्रोटक ध्वनियाँ
छाईं सर, गिरि-गह्वर में;
चमका त्रिशूल बस, ज्यों ही
त्रिपुरान्तक के कर-वर में!

× × ×
× ×
× × ×
× ×

नाचो, हे नटवर ! नाचो,
अविराम गगन-जल-थल में;
सर्वत्र विचित्रित कर दो
निज प्रलय-लालिमा पल में !

जिसकी मृदु-छवि पर उमगे
तरुणों की अरुण जवानी !
झुक जायें बलि होने को
सौ-सौ मस्तक अभिमानी !

दो बजा पुनः वह अपना
डमरू, ओ डमरूवाला !
फिर एक बार दिखला दो
वह रुद्र रूप मतवाला !

लख जिसकी गति-विधियों को
चिनगार उठे हिम से भी !
युग-युग समाधि में सोये
हुंकार करें मुर्दे भी !

खोलो त्रिनयन को अपने
फिर एक बार लोलेक्षण;
जिसकी संहार - जलन में
जल जाये पापी-जीवन !

घूमो चण्डीश्वर, घूमो
निर्भय निर्धूम चिता में;
भर दो निज मादकता कुछ
इस कवि की भी कविता में !

जिसकी तानों पर तीखी
तुम भी फूलो, इठलाओ !
झूमो नटराज, नशे में;
तुम रह रहकर बल खाओ !

जिससे अकाण्ड-ताण्डव की
सुधि भूलो तुम हे शंकर;
मैं करूँ आज पागल-सा
वह अट्टहास प्रलयंकर !

२५, अक्टूबर, ३१]

———-

अमृत-लता

आई इतनी दूर कहाँ से
तुम भूली - भाली सजनी ?
कैसी लगती इस कुसुमित
कानन की हरियाली सजनी ?
झाँक रहीं क्या ऊपर से नव-
ऋतु की दीपाली सजनी ?
पुष्पों की सुकुमार पियाली में
मद की लाली सजनी ?

उपवन-उपवन में क्यों तुमने
एक व्यथा-सी पाली सजनी ?
छोड़ गया है इस निर्जन में
तुम्हें कौन वनमाली सजनी ?

लता - कुञ्ज - तरु - गुल्माच्छादित
इस एकान्त वनानी में
मचल रही हो तुम अलबेली,
अपनी ही नादानी में!
लेटी हो नव पल्लव-शय्या पर
सुख - भरी, सुहाग - भरी;
साँसों से सौरभ की सौ-सौ
सरिताएँ पड़तीं उमड़ी!

कुटिल कंटकालिङ्गन में कटु,
कवरी-बन्धन भूला सजनी!
शिथिल पवन ही बना तुम्हारा
अनुपमेय-सा झूला सजनी!

वैभव के इस कंचन-मन्दिर में
क्यों सुषमांचल खाली?
किस चंचल ने आली, पथ में
ले ली फूलों की डाली?
यहाँ मूल का प्रश्न; प्रणय में
सुख - सुविधाएँ अनहोनी!

बढ़ आईं तुम समझ - बूझकर
फिर भी क्यों लोनी - लोनी ?
देखा किस कदम्ब के कानन में
जीवन-धन अपना सजनी ?
वह जागृति की चेतनता थी;
या सुषुप्ति का सपना सजनी ?

कैसे हुआ तुम्हारा वन से
प्रथम-प्रथम नीरव परिचय ?
किस मधुवन में सुमुखि, किया था
कोमल भावों का संचय ?
शत-शत रन्ध्रों से पत्रों के
उलझ रही छबि की झाईं !
झलकी चम्पक के परिमल-सी
दूर्वादल पर परिछाईं !
कहाँ अमर यौवन, मादकता
इतनी तुमने पाई सजनी ?
हिला समस्त विटप को देती
एक - एक अँगड़ाई सजनी !

उतरो मत; झुलसा देगी
जग-जीवन की दारुण ज्वाला!
दीवानी बन जाओगी पी
इस मधुशाला की हाला!
हाय न छोड़ो इन घुँघराली
सरस-सुनहली अलकों को;
उहूँ—मूँद लो बाले, अपनी
अलसाई-सी पलकों को!

तुम वातायन पर सरसी, हैं
खड़े इधर मतवाले सजनी!
मुसकाओ मत; यहाँ पड़े हैं
बूँद-बूँद के लाले सजनी!

तुम कल्पित आकाश-कुसुम-सी
स्वेच्छा से निशिदिन खिलतीं;
खिलतीं, खिलकर उसी शून्य में
पुनः तत्त्व-सी जा मिलतीं!
कैसे जान सकोगी फिर यह
घूर्णिचक्र का आवर्तन?

निखिल जगत के हृत्स्पन्दन में
द्वन्द्वों का भीषण नर्तन!
इस नरकानल में रहकर ना
कोई भी कल पाता सजनी;
इसीलिए क्या तोड़ लिया है
तुमने जग से नाता सजनी?

किस रहस्यमय की आकांक्षा
तुमको यहाँ उड़ा लाई?
छाई—आमों पर मञ्जरियाँ-
सी बनकर अलि, बौराई!
क्या मरीचिमाली का भास्वर
ताप और क्या घनमाला;
सदा एक-सी सजनि, तुम्हारी
रहती कंचन की काया!
पिला दिया बस, जिसने तुमको
एक प्रेम का प्याला सजनी,
तुम बन गई उसीके उर की
स्नेहमयी वरमाला सजनी!

ओ रूपसि, पर किससे तुमने
ऐसी निर्ममता सीखी?
बही तुम्हारे मानस में
यह कैसे विषधारा तीखी?
जिसके अविरल हृदय-रक्त से
पलीं, बढ़ीं दिन-दिन दूनी—
किस प्रकार कर दी उस तरु की
हो तुमने गोदी सूनी?
अरी, तनिक तो इस प्रपंच-छल-
निष्ठुरता को छोड़ो सजनी!
वारवधू की-सी इस वंचकता से
तो मुँह मोड़ो सजनी!

पावस-शिशिर-वसन्त; सभी में
एक रंग, रस, मधु, बाना!
शुष्क जलाशय हुआ न हिय का;
जाना नहीं मुरझ जाना!
चिर-हासिनि, बस तुम्हीं विश्व में
यथार्थतः ही हो अबला;

औरों पर सारा जीवन ही
सदा तुम्हारा सजनि, पला !
फिर भी तुम हो सचमुच ही इस
जग में सदा सुहागिन सजनी !
तज देती हो प्राण अनाश्रित
होते ही बड़भागिन सजनी !

सुनो, कहे देता हूँ अन्तिम-
बार बात इतनी सजनी—
गिनती रहो हुए दिन कितने,
औ' रजनी कितनी सजनी ?
अरी, अमर सौन्दर्य-राशि पर
फूलो मत मन में सजनी !
लिपटी रहो सदैव कली-सी
प्रिय के दामन में सजनी !
यहाँ धूल में तड़प रहे हैं
कई मुकुट के मोती सजनी !
विपुल विभूति युगों की संचित
ज्वलित चिता में सोती सजनी !

१०, जनवरी, ३४]

——

श्याम मरण

श्याम - सम सुकुमार; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

सुन रहा मोहन, तुम्हारी
रागिनी मैं वह प्रलय की ;
खो चुका मैं चपल स्पन्दन-
शीलता अपने हृदय की !
कर रहा अनुभव कपोलों पर
तुम्हारा श्वास मधुमय ;
आज इतनी शीघ्र क्या
आ जायँगी घड़ियाँ प्रणय की ?
कौतुकी तुम, कल्पना के
पुण्य - वृन्दावन - विहारी ;

प्राण, तुम चितचोर मेरे;
पीत - पट - परिधान - धारी !
निशि - दिवस तिरती तुम्हारी
ही मधुर छबि लोचनों में;
और प्रतिपल प्राण - वन में
बाँसुरी बजती तुम्हारी !
गूँजती दिन - रात कानों में
तुम्हारी मंजु पग - ध्वनि !
बन गये हैं तव अनल-
भुज - पाश कंठाभरण मेरे !
श्याम - सम सुकुमार; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

याद है, राधा - सखी के
प्रेम की अब भी कहानी !
गोपियों के लोचनों का
सूख पाया है न पानी !
विकल ब्रज के रजकणों में
आज - तक भी जो पड़ी है;

हाय, वह किस कौतुकी के
चपल - चरणों की निशानी ?
याद है, वह रात अब भी
धूम थी तुमने मचाई !
माधवी की कुंज में जब
प्रीति थी मुझसे लगाई !
कामना के नीप - तरु पर
प्रेम - कालिन्दी - किनारे,
प्राण, पहली बार अपनी
मुरलिका विष की बजाई !
प्रिय, किया था मान मैंने:
और तुमने मुसकराकर,
कर दिये निर्माल्य - से थे
दूर लज्जावरण मेरे ;
श्याम - सम सुकुमार ; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

प्रति शरत की पूर्णिमा में
तुम मुझे आह्वान करते ;

प्राण, मेरे विजन - मानस-
वीथि - वन में गान करते !

जल रहा दीपक जगत में
साधना का एक युग से ;

एक ही निःश्वास से क्यों
तुम उसे निर्वाण करते ?

ले तुम्हारा ही अमर
सन्देश प्रिय, मधुमास आता ;

सजल पावस - मेघ में
इंगित तुम्हारा मौन पाता !

कोकिला मुझको बुलाती
नित तुम्हारे ही स्वरों में !

और, दक्षिण-वायु शीतल
प्रिय तुम्हारा स्पर्श लाता !

मैं रुकूँ कैसे भला
बोलो तुम्हीं, बोलो हृदय-धन !

प्रति निमन्त्रण पर स्वयं जब
मचल उठते चरण मेरे !

श्याम-सम सुकुमार; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

नाम ले उस रोज मेरा
नींद में ज्यों-हो पुकारा !
स्वप्न से मैं चौंक दौड़ा
भग्नकर संसार - कारा !
वह पराजय या विजय थी;
आज - तक भी मैं न समझा !
पर, न यह अज्ञात—
तत्क्षण हो गया प्रेमी तुम्हारा !
छोड़कर मुझको न जाओ;
प्रिय, तुम्हें पहचानता मैं !
दे रहे संकेत जो तुम,
अर्थ उसका जानता मैं !
खिंच रहा प्रतिक्षण तुम्हारी
ओर मैं नीहारिका - सा;
एक ही तुम केन्द्र मेरी
गति-परिधि के, मानता मैं !

रह सकोगे हाय, कैसे
तुम अकेले ही वहाँ पर ?
मुक्ति के कारण, तुम्हीं
सर्वस्व, चिन्ताहरण मेरे !
श्याम-सम सुकुमार; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

भूल सकता मैं न तुमको
देवता, यह जान लो तुम ;
आज अन्तिम बार भी तो
प्रिय, मुझे पहचान लो तुम !
प्रथम परिचय में मधुर जो
वेदना दी विहँस तुमने ;
प्राण, उस उपहार का अब
करुणतम प्रतिदान लो तुम !
एक दिन आओ अतिथि बन-
कर कभी मेरे भवन में ;
प्राण, निःसंकोच हम दोनों
मिलें एकान्त-क्षण में !

तुम करो मधु-नृत्य मेरी
हृदय-यमुना के पुलिन पर;
और, मैं वंशी बजाऊँ
प्रेम के अन्तिम मिलन में!
हो सुखी सबसे अधिक
वह दिन हमारी जिन्दगी का;
सृष्टि के आरम्भ से ही
ये विफल अवतरण मेरे!
श्याम-सम सुकुमार; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे!

मैं तुम्हारी बाहु-छाया में
पड़ा चिर-शान्ति पाऊँ!
अग्नि-ज्वाला से प्रणय की
प्यास मैं अपनी बुझाऊँ!
और, सो जाऊँ तुम्हारी
गोद में ही चिर-दिवस को;
कामना क्या आज मेरी—
मैं तुम्हें क्योंकर बताऊँ?

चिर - दिनों पर आज खोला
फिर तुम्हारा द्वार मैंने;
और छोड़ा प्रिय, तुम्हारे
ही लिए संसार मैंने !

विश्व के सौन्दर्य को
ठुकरा दिया मैंने पदों से;
भूमिका में ही किया
अब शेष उपसंहार मैंने !

आज क्या अभिसार हो
मेरा जगत की पुतलियों से ?
जान पाओगे कहो, कब
प्राण ये उपकरण मेरे ?
श्याम - सम सुकुमार ; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

कर सका क्षण - भर न प्रिय,
निश्चिन्त हो शृङ्गार भी मैं !
हाय, दो पल भी किसीको
कर न पाया प्यार भी मैं !

जब बुलाहट प्राण - धन,
आई तुम्हारी वेणु - वन से ;
शीघ्रता में ले सका
निष्ठुर, न कुछ उपहार भी मैं !
सुन्दरी आई, न देखा;
लोचनों में अश्रु - कण थे !
और, प्रियजन ने पुकारा;
पर बधिर मेरे श्रवण थे !
विश्व की ममता खड़ी थी,
रोककर तब मार्ग मेरा ;
हाँ, मनाने को उसे
लेकिन बचे आशीर्वचन थे !
कर दिया विह्वल मुझे
इतना, रही कुछ भी न सुध-बुध !
दौड़ मैं सहसा पड़ा
असहाय, अशरण - शरण मेरे !
श्याम - सम सुकुमार ; तुम
प्रियतम मरण, हे मरण मेरे !

२५, फरवरी, ३८]

—

उल्लास

सुन्दरता अभिशाप विश्व का,
सुन्दरता वरदान, प्रिये ;
इस क्षण - भंगुर सुन्दरता पर
मत करना अभिमान, प्रिये !

देखा फूलों को खिलते सखि,
फिर देखा मुरझाते भी ;
आते देखा जिसे जगत में,
उसे यहाँ से जाते भी !

चला कुसुम का सौरभ पीने,
मिटी न लेकिन प्यास कहीं ;
मसल उसे जब देखा, पाया
वह परिमल, वह वास नहीं !

चुभा करें काँटे पैरों में,
पगलों को परवाह नहीं;
दीवानों को जो भटका दे,
ऐसी कोई राह नहीं!

पगले वे, जो तिनके पर चढ़
उदधि पार कर जाते हैं:
दीवाने वे, जो तूफानी
लहरों पर भी गाते हैं!

यौवन के इस प्रखर तरणि को
एक दिवस ढल जाना है:
मृत्यु - ताप लगते ही हिम की
इस छबि को गल जाना है!

जाना पड़ता कभी किसी दिन
सर्वनाश की राह, प्रिये!
सहना पड़ता कभी सभीको
रक्त - चिता का दाह, प्रिये!

महा - प्रलय के ये दिन आली,
युग - युग की करुणा रोती;
लाल - लाल अङ्गार सजाते,
छूते भी ममता होती !

सोता मरघट की शय्या पर
यह सारा संसार, प्रिये !
जलते अग्नि - चिता - ज्वाला में
खिलकर कुसुम - कुमार, प्रिये !

रुक न सकेंगे पैर और ये
रुक न सकेंगे प्राण, प्रिये !
कौन सँभालेगा, जिस दिन वह
आवेगा आह्वान, प्रिये !

आओ, आज मना लें मन को ;
कर लें जग से प्यार, प्रिये !
जब - तक कंठ मुक्त है, गा लें
प्रणय - गीत दो - चार, प्रिये !

श्वास - श्वास पर बजती भेरी,
निमिष - निमिष पर हार, प्रिये !
आओ, जब - तक नयन खुले हैं,
हो लें एकाकार, प्रिये !

यह दुनिया है, हम दोनों हैं ;
और वासना - ज्वार, प्रिये !
रोके कौन, जगी अन्तर में
जब इच्छा दुर्वार, प्रिये !

दोनों ओर भयानक पर्वत,
फिर भी मन दीवाना है ;
इस घाटी से, बीहड़ पथ से,
असि - धारा पर जाना है !

रुक जायेगा जिस दिन जीवन का
रथ, उतर पड़ेंगे हम ;
पैदल ही इतनी दूरी को
हँसकर तै कर लेंगे हम !

आओ, तब - तक महा - प्रलय की
मृत्यु - गोद में हम खेलें ;
प्रिये, प्रलय के पहले जग का
कुछ भी तो अनुभव ले लें ;

यह विनाश का दुर्मद सागर,
दुर्बलता का पाप न लें ;
नाव नहीं—भय क्या, क्या शंका ?
हँसते - हँसते तैर चलें !

जाना है निश्चय जब जग से,
फल क्या रोकर जाने से ?
रोना पाप यहाँ—क्या होता
अश्रु - नीर बरसाने से ?

हँसते-हँसते कभी मिटूँगा ;
प्रिये, प्रणय का गान करो !
आओ, आज भुला दो दुख को ;
यहीं स्वर्ग - निर्माण करो !

जलना तो है प्रिये, किसी दिन;
किन्तु, नहीं वह आज जले!
आज नहीं रोने के दिन सखि,
आज नहीं आँसू निकले!

हृदय-रुधिर पी-पीकर मेरी
जिये वेदना मतवाली!
देखो, कहीं न धुल जाये, पर,
मेंहदी की ऐसी लाली!

एक बूँद भी गिरे दृगों से,
आज हमें वह मंत्र न दो;
काँटों के भय से पथ छोड़ूँ;
भाई, ऐसा यंत्र न दो!

जला करे नन्दन-वन, कोकिल का
ऋतुपति - स्वर याद रहे;
आठो पहर चहकती मेरी
मस्ती यह आबाद रहे!

प्रलय-भूमि में प्रणय-पुष्प बन
दोनों आज खिलेंगे हम;
नव-वसन्त में फूट पड़ेंगे,
सुख से अचिर हिलेंगे हम!

जो माँगेगा, दे देंगे हम
राशि-राशि मकरन्द, प्रिये!
हम आनन्दी-जीव लुटा देंगे
जग में आनन्द, प्रिये!

जो आयेगा, प्यार करेंगे:
जीवन-दान करेंगे हम!
बदले में न कभी कुछ लेंगे,
सबसे गले लगेंगे हम!

पत्थर हैं, ऊँचे टीले हैं;
प्रेमी बढ़ते जाते हैं!
पर्वत हो या नदी सामने,
धुन में चढ़ते जाते हैं!

आँखें ऐसी कौन जगत में,
प्रेमी को जो पहचानें?
क्या घायल दिल की चोटों को
बेदरदी दुनिया जाने?

प्रलय-मिलन के ऐसे दिन ये,
बड़ी दिवानी घड़ियाँ हैं!
तोड़ें कैसे भ्रमर, प्रेम के
फूलों की हथकड़ियाँ हैं!

वल्लरियाँ बढ़ रहीं पेड़ पर,
इधर मौत की छाँह घनी;
आओ, प्राण जुड़ा लो; कहती
तृष्णा मृदु - गलबाँह बनी!

जाये भूल स्वर्ग के सुख को,
जग से ऐसा द्रोह नहीं!
लात मार दे प्रेम - प्रीति को,
ऐसा भी क्या मोह कहीं?

पाषाणी को वाणी दे दे,
पिघला दे विस्तीर्ण धरा;
जो न करे, है वही बहुत; सखि !
प्रेमी का मानस ठहरा !

हरसिंगार से रँगा नखों को,
चम्पा से जिन गालों को;
आज, देख लो—वही चूमते
मृत्यु - चिता की ज्वालों को !

इस नगरी के पंथ निराले,
दिन - भर फेरी दिया करो;
सातो सागर उमड़ पड़े हैं;
जी चाहे जो, पिया करो !

आज शहीदों की समाधि पर
हरी घास उग आई है;
प्रिये, जहाँ से करुण कपोती
कंकड़ चुन - चुन लाई है !

१६, अक्तूबर, ३५]

सजला

मेघ - नगर - निवासिनी ;
रूपसी तुम कौन हो
आकाश - मार्ग - विलासिनी ?

अश्रुमय संसार में ;
बादलों के लोक-दुर्लभ
अन्ध - कारागार में !
वन्दिनी रोतीं कहो, क्यों
चपल - विद्युत - हासिनी ?

सजल दृग-कलि-दल धुले ;
विरह का उच्छ्वास भर
सुर - चाप के कुन्तल खुले !
विकल वर्षानिल तुम्हारे
शोक से स्मित-भाषिणी !

८, अक्तूबर, ३७]

वसन्त-विलास

आज, नव मधु का प्रात ;—

आज रे मधु का पुलकित प्रात;
अरुण-सस्मित, नत - भाल !
स्फीत मुक्ता - सा, मुख - जलजात;
लाज से लोहित गाल !
प्राण, आया विस्मय - अवदात;
सजल, चम्पक - सा गात !

माधुरी - अधरों पर मुस्कान;
कुतूहल - कलित कपोल !
पुष्प - परिमल - पीतस परिधान;
विलोचन उत्सुक लोल !
उतरता सुरधनु - सा रुचिमान;
स्वयं ही निज उपमान !

उमड़, बह, छू असीम का छोर,
हिला किरणों का हार;
चला विपुला वसुधा को बोर
लालिमा – पारावार !
नलिन - पुलिनों में भृङ्ग अपार
कर रहे कुंज - कुंज गुंजार !

मलय - मारुत में रुक, झुक - झूम,
विजन - वन-वल्लरियाँ सुकुमार;
मुखर कर देतीं धीरे चूम
शिथिल ऊर्वी के उर के तार !
स्पर्श से खिल उठती तत्काल,
नवल ऋतुपति की किसलय-डाल !

आज, प्राची का हास ;—

आज रे प्राची का मधु-हास;
वीचियों का उल्लास !
दृगों में छबि का छायाभास;
ज्योति-चुम्बित आकाश !
भर रहा भव में भूति-हुलास;
प्राण, रज-रज में सुख का श्वास !

समीरन आकुल, पुलक - अधीर;
सजग जग, विपुल-प्रवाल !
गुँजा पल्लव-गृह, लता-कुटीर,
तोड़ तन्द्रा का जाल;
द्रुमों से उठ - उठ खग-कुल-रोर
फैलती जाती चारो ओर !

निराशा का नर्तन उद्दाम;
व्यथा का रुदन - विलास !
अमुद्रित नयनों में अविराम
विरह का रूप उदास;
स्वप्न - सा हुआ आज उच्छ्वास;
प्रवासी का अज्ञात - निवास !

यूथिका - यौवन - वन में आज,
प्रणय का जलता दीप !
मचलता दल - दल पर ऋतुराज;
रोम - हर्षित तरु - नीप !
कल्पना के नीलम पर खोल,
भाव उर के उड़ते अनमोल !

आज, नव - वन्दनवार ;—

आज रे गृह - गृह वन्दनवार;
नृत्य - चंचल संसार !
डोलता वन-वन में मंदार;
कौन चल - चरण उदार
खोल नन्दन का दक्षिण - द्वार
झाँकता बारम्बार ?

मदालस फाल्गुन का अभिसार;
पिकी के मादक गान!
शिरीषों का वेणी - शृङ्गार;
वकुल का नीरव 'ह्वान!
उठा अग - जग में अयुत अपार;
स्वर्ण - सुषमा का ज्वार!

निरन्तर प्राणों में उन्माद;
प्रेम की आज, उमङ्ग!
वीथि - वन - पथ में मधु - संवाद;
वेणु की विकल तरङ्ग!
गन्ध-मूर्च्छित जगती का 'ह्लाद;
कुहू-मुखरित दिगन्त-प्रासाद!

आज, वन-वन में मधु का हास;
अमर मर्मर - निःश्वास!
कहाँ से आकर कनक - प्रकाश
भर गया जग का 'वास?
गन्ध में पुलक; पुलक में प्राण;
प्राण में शत - शत मान!

आज, पागल मन-प्राण ;—

आज रे पागल तनु - मन - प्राण;
हृदय उन्मन अनजान !
विरह शत - कल्प - निशा अवसान;
मिलन का यह दिनमान !
चुभ गये रोम - रोम में आन
कुसुमशर के केशर के बाण !

इसी मधु - मादक - क्षण में आज,
मुस्किरा दो मधुबाल;
एक चुम्बन, कौतुक का व्याज;
इधर दो अधर - प्रवाल !
तुम्हारा यौवन - मद कर पान;
सरस हो उठे हृदय-मन म्लान !

सुरभि–मधु–छाया–वन में ’कान्त,
आज चंचल चित - चाह;
हृदय - अम्बुधि - सा क्षुब्ध, अशान्त;
रुधिर में उष्ण प्रवाह !
मत्त - मानस मद - सा दिग्भ्रान्त;
आज, उन्मद मेरा मधु - प्रान्त !

तुम्हारी मुख - छबि ही सुकुमारि,
विश्व का प्राणाधार;
तुम्हारा पावन लोचन - वारि;
प्रणय - मंजुल उपहार !
तुम्हारे ही गौरव के गीत;
आज, गाता जगती का ’तीत !

आज, आकुल संसार ;—

आज रे आकुल यह संसार;
शालि - शाद्वल सुकुमार !
उमड़ता तरु - तरु से मधु - भार;
मल्लिका के उद्गार !
रुद्ध क्यों रूपसि, तव गृह-द्वार ?
किंकिणी की नीरव झंकार !

राज - पथ में उड़ती मधु - गन्ध ;
पीत - पुष्पल रस - रेणु !
मदिर-मलयज, मृगनाभि अबन्ध ;
वासना - वीणा - वेणु !
बजा लो, लोक - लोक में मन्द्र
प्रथम मधु का यौवन-जय-तूर्य !

आज, माँगूँ यदि लीला - दान,
विनत मत करो वदन-विधु-साज;
आज, छलके यदि निधुवन-मान;
न आये उमड़ दृगों में लाज !
तुम्हें हो आज न भय-संकोच:
लचक, बंकिम कटि, भ्रू में लोच !

जहाँ हिलते सरि - वर्ती वेत्र;
मौलश्री - वन के पास !
हृदय से हृदय, नेत्र से नेत्र;
मिला श्वासों से कम्पित श्वास !
जुड़ा लेने दो प्यासे प्राण:
प्रिये, वर्षों से प्यासे प्राण !

आज, मोहन - शृङ्गार;—

आज रे कर मोहन - शृङ्गार;
मुकुल - घूँघट - पट खोल!
उड़ा दिशि - दिशि में मधु - प्रावार;
रसालों का हिन्दोल!
नाचता पत्र - पत्र पर लोल
व्यस्त, व्याकुल-पद, चपल वसन्तः

आज, श्यामा का कोमल कण्ठ
शुकों का प्रेमालाप!
प्यार भी होगा क्या अभिशाप?
चन्द्रिका रवि का ताप?
प्रिये, खिंच आया स्मिति - सुरचाप
आज अधरों पर अस्फुट आप;

यही तो मानव का संसार;
मर्त्य का कारागार!
प्रलय - तृष्णा का उदधि अपार;
विरह में स्मृति आधार!
किसी से कर लो क्षण - भर प्यार;
मृत्यु पर फिर किसका अधिकार?

जगत के अमित - अमित आघात
आज, आओ तुम भूल;
मिलन का यह मधु - मत्त - प्रभात;
वृथा चिन्ता के शूल!
प्रिये, जग में केवल आनन्द;
आज, सुषमा के सौ-सौ छन्द!
यहाँ उड़ते सुख के मकरन्द!

आज, छाया मधुमास ;—

आज़ रे छाया नव मधुमास;
चतुर्दिक हर्ष - हुलास !
प्रवाहित मधु-उत्सव का उत्स;
प्रेम - परिमल - सा हास !
मुक्त वातायन - पथ से मुग्ध
उमड़ती मृदु मृग - मद की वास !

स्निग्ध दूर्वादल, हरित प्रियङ्गु;
विहँसते बहु वन-फूल !
मृगी-मृग-दल रोमन्थन-लीन
प्रकृति के रत्न-दुकूल !
आज, वन-वन में बहुल-विनोद;
रभस-रति-सुख, आमोद-प्रमोद !

सजनि, झंकृत नस-नस के तार;
मत्त यौवन का भार !
मञ्जरी-मधु का उर्म्मि-विहार;
समीरन का संचार !
प्रणय के फूलों से लो, लाल
लद गई उर-उरहुल की डाल !

केतु यह ऋतु-पति का रंगीन;
क्षितिज का हीरक छत्र !
नवल मन, नव तन, हृदय नवीन;
द्रुमों में नूतन पत्र !
नवल कुसुमायुध, नवल वसन्त;
आज, उर-उर में काम अनन्त !

आज, नव-मधु के प्रान ;—

आज रे उद्वेलित नव - प्रान;
अकुंठित उर के गान !
छोड़ सखि, यह वियोग व्यवधान;
हाय, मन्मथ के बाण
भग्न कर गये सुरों के ध्यान;
योगियों का भी युग का ज्ञान !

आज, छाया मधुमास पुनीत;
स्वर्ग का सुख - संगीत !
नवल ऋतु - नायक के संदेश
काट देते भव - बन्धन - क्लेश !
प्रबल भुज - पाशों का आश्लेष;
आज, ले लो सखि, एक विशेष !

बाहु - लतिका ग्रीवा में डाल,
उठा कल चिबुक कपोल;
स्वयं ही बन कोमल वरमाल
चला चितवन - शर लोल
वेध डालो शतदल - से प्राण;
तन्वि, मेरे विह्वल - से प्राण !

खुले, ढीले, बालों का जाल:
कसे - से कलश - उरोज !
रँगीले, गीले, गोरे गाल;
कंटकित स्वयं मनोज !
तुम्हारा बन जाये आधार
पृथुल उरु मेरा ही सुकुमार !

आज, आये ऋतुपति के दूत;
विवश अन्तःपुर में मधु-पूत!
इधर देखो सखि, मेरी ओर;
प्रणय - मधुवन में आत्म - विभोर!
कामना 'मृत से कर दूँ रिक्त
त्रिवलि - रोमावलि सिक्त!

हासमयि, लीलामयि, पिक - वाणि;
गौर - तनु, कंचन - कांति!
तुम्हारे कुवलय - कोमल - पाणि;
विधुर-उर की चिर-शान्ति!
आज, मुख पर सखि, रख दो दग्ध
मदिर निज यौवन-सुरा प्रगल्भ;

उठा दे अणु - अणु में रोमांच
तुम्हारा अंगुलि - इंगित आज;
मुक्त कर दो शशि को अकलंक;
आज, क्या अवगुंठन का काज?
चले छू विरह - वसन तव देह
रक्त में विद्युत - वेग;

आज उर - उर में रति की आग;
केलि का कौतूहल, अनुराग !
विश्व - वन में मृदु - पुलक - प्रसार;
गन्ध - मधु - मूर्च्छातुर संसार !
चुम्बनों से भर दो अभिसार;
आज ये बिम्बाधर सुकुमार !

फिराओ आज न कान्त - कपोल;
फुल्ल पाटल - सा चंचल हास !
छुड़ाओ मत इन्दीवर - वक्ष;
कलित - कुन्तल - आकुल भुज - पाश !
मुग्ध - तनु, कम्पित, इन्द्रिय बन्ध;
तुम्हारे यौवन-मद की गन्ध !

फुल्ल बाँहों का मुग्ध मृणाल;
बाल - मुकुलों की माल !
खिली रोओं की पुलकित डाल;
वदन जावक से लाल !
सुनहली किरणों का दृग - पात;
आज, उज्ज्वल मधु-प्रात !

२४, मार्च, ३४]

पाषाणी

मौन ! मौन क्यों आज, नियत की
महानिशा कल्याणी ?
कुंठित कंठ, धरा - लुण्ठित वपु,
शान्त वनान्त - वनानी !
क्यों न गूँजती गिरि-दरियों में
उर की गदगद वाणी ?
बोल, बोल, क्यों आज, मौन तू
ऐ मेरी पाषाणी ?

किस ऋषि के अविमोघ शाप से
पतित हुई तू प्यारी?
पक्षहीन वन - विहग - बालिका-
सी भू पर सुकुमारी!
छल से या सहमति से कह तो,
कौन तुझे कुविचारी—
मधु - निशान्त में लूट गया है
अरी, गौतमी नारी?

अनुपमेय प्रतिमा यौवन की;
जीवन का वर सुन्दर!
भूल सकल आडम्बर सोया
अब सैकत - शय्या पर!
बता कहाँ वह रस का सागर?
परिमल-लोलुप मधुकर?
दिया तुझे किस निष्ठुर विधि ने
पत्थर का अभ्यन्तर?

निरख व्योम के नील-द्वार पर
प्रहरी संध्या-तारा,
सो जाता सुख-शान्ति-नीड़ में
जब वन-प्रान्तर सारा;
क्या विज्ञात तुझे कि जलाकर
लोचन-दीपक प्यारा—
कौन प्रतीक्षा में तेरी है
बहा रहा जल-धारा!

किस जादूगर का यह कौशल?
किस मोहन की माया?
पड़ी आज इस शून्य पन्थ में
कौन अचेतन काया?
करते व्यजन विहंगम; देती
शाल-वल्लरी छाया!
ऐसी निद्रा; किन्तु, किसीने
उसको जगा न पाया!

रक्त - पलाशों के वन में
जलता सौरभ का पावक;
तिरता अम्बर की सरसी में
पूर्ण-चन्द्र का दीपक !
खिल निकुञ्ज में बाल - मालती-
लता आप कुम्हलाती;
पुलकित चकित-चपल मृग-शिशु की
स्मृति न तुम्हें क्या आती ?

पहना जाती वनदेवी नित
पद्म - मुकुल की माला;
कादम्बिनी पूर्ण कर देती
सुरभि - सुरा से प्याला !
सरिता का उल्लोल; मरालों का
कल-हास निराला,
करता विफल प्रयास मिटाने का
अन्तर की ज्वाला !

उठती आज न पुलक - वेदना
उर में धीरे - धीरे;
कौन विपञ्ची के तारों को
सहसा आकर मीड़े ?
तमसा - तट पर वेत्रवती के
शीतल स्निग्ध समीरे,
आती किस अतीत की मधु-स्मृति
कुवलय - कुञ्ज - कुटीरे ?

बिखरे सुमन - हार चरणों पर
पथिक - वधू-जन - वन्दित;
दिश - दिश चक्रवाक - रोदन से
प्रतिध्वनित, आक्रन्दित !
किन्तु, कहाँ वह शुभ्र गात - छबि
ओषधीश - अभिनन्दित ?
शून्य चिबुक, कच शुष्क, क्षीण तन,
अधराधर निस्पन्दित !

कभी याद क्या आती कतराती
कुल्या गम्भीरा ?
मधुराका में प्रिये, सदा - नीरा की
कल - कल क्रीड़ा ?
भूल गई क्या सचमुच प्रियतम-
दर्शन-जनित वह पीड़ा ?
फुल्ल - कपोलों पर लहराती
चुम्बन-वन की व्रीड़ा ?

डोल रही वन - लता पवन की
मोहमयी श्वासों से;
उमड़ रही सुख - सुरभि माधवी के
कल - विन्यासों से !
पाषाणी, क्यों उदासीनता
तेरे उल्लासों से ?
बैठी किसके पदस्पर्श - हित
वर्षों से, मासों से ?

२८, अप्रैल, ३४]

जुही की कली

 री सजनि, सुन, तू अभी नादान !
कहीं भ्रम के जाल में पड़ खो न देना मान;
सुन, सजनि, वन की कली नादान !

दानशीला बन न इतनी अभी से सुकुमारि;
नहीं, रोयेगी बहा तू अन्त में दृग-वारि !
विश्व की इस हाट की है अति अनोखी रीति;
कौन किससे सर्वदा करता यहाँ पर प्रीति ?
बादलों की क्षणिक छाया-सी यहाँ पहचान;
 री सजनि, तू तो अभी नादान !

एक कलिका बन छबीली विश्व-वन में फूल,
सरस झोंके खा पवन की तू रही है भूल;
पखड़ियाँ फूटीं नहीं, छूटे न तुतले बोल;
मृग-चरण-चापल्य, शैशव-सुलभ कौतुक लोल !
और, पाई वह न मादकतामयी मुसकान;
सुन, सजनि, तू अधखिली नादान !

अभी तेरे बाल-जीवन का हुआ न बिहान;
वदन-मंडल पर न उमड़ी अरुणिमा रुचिमान;
चूमतीं किरणें न शत-शत प्रिये, तेरे गाल;
हो न पाये हैं मधुर ये अधर-रस से लाल!
पूर्ण कर कैसे सकोगी फिर अमित अरमान?
सुन, कली री, सुनहली नादान!

देखना हाँ, लुटा देना तू न अपना कोष;
अभी कुछ दिन और पगली, तनिक कर सन्तोष!
अरी, अधजल-भरी गगरी डगर में तज लाज—
मोह - वश छलका कहीं देना नहीं तू आज!
दूर, —इस जन-शून्य पनघट पर अकेली जान;
री सजनि, है तू अभी नादान!

है नहीं तुझमें तनिक भी वास का आभास;
जानती माया न तू, रोमांचकर परिहास!
मचलना सीखा नहीं—उभड़ा न तन अवदात;
लोचनों में लोच ना, लीला-कुटिल भ्रू-पात!
चितवनों से कर न सकती तू विमूर्च्छित प्राण;
सुन, सजनि, वन की कली नादान!

सुख निमिष का; दग्ध करता पर, युगावधि पाप !
कौन लेगा मोल यों आमरण पश्चात्ताप ?
पतन-पथ पिच्छल, सुगम, अस्पृश्य लोकाचार !
किन्तु, रखना याद वह दिन भी—जरा वह वार;
विफल जब हो जायँगे सब कला-कौशल-ज्ञान;
री सजनि, तू अधखिली नादान !

सत्य से युग-सभ्यता को आज होती भीति :
छल-कपट ही धर्म, वंचकता बनी नर-नीति !
बह रही दुर्वासना की एक कर्दम धार;
तैरकर है चाहता जग जिसे करना पार !
बन सकेगी सच बता, क्या सुमन-शर का बाण ?
तू सजनि, वन की कली नादान !

देख, ये जो डोलते हैं भ्रमर मधु के चोर;
भूलकर भी मत बुलाना इन्हें अपनी ओर !
तोड़कर सुख-वृन्त से, रस चूस, तन झकझोड़,
चले जायेंगे अकेली तुझे रोती छोड़ !
धूल में मिल जायगी फिर सभी तेरी शान !
सुन, सजनि, तू तो अभी नादान !

पंखियों में ही छिपी रह, कर न बातें व्यर्थ !
ढूँढ कोपों में न प्रियतम—नाथ का तू अर्थ !
हटा घूँघट-पट न मुख से; मत उझककर झाँक !
बैठ पर्दे में दिवा-निशि मोल अपना आँक !
कर अभी मत किसी सुन्दर का निवेदन-ध्यान;
री सजनि, वन की कली नादान !

आ समीरन मृदुल-पद तुझको करेगा प्यार;
और होयेगा निछावर मधुप सौ-सौ बार !
तितलियाँ बहकायँगी, भटकायँगी सखि ! राह;
कोकिला-बुलबुल भरेगी आह, दिल में चाह !
छोड़ उनका संग, यदि तू चाहती कल्याण;
सुन, कली री, सुनहली नादान !

साज मनहर वेश आये विपिन में ऋतुराज;
तथा पुलकित हो उठे तरु, लता, पुष्प-समाज !
बहे उन्मद मलय-मारुत मन्द-गति से क्यों न ?
सिहरना पर तू न; रहना अटल, निश्चल, मौन !
आ भले ही खग रिझावे तुझे गा मधु-गान;
री सजनि, तू अधखिली नादान !

४, दिसम्बर, ३०]

अनाश्रित विहङ्गम

उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर?
याचना तृण की करूँ
कैसे किसी से दीन होकर?

आ रही संध्या धरा में;
फैलता जाता अँधेरा!
खो गया किस अन्ध-वन में
हाय, जीवन-मार्ग मेरा?
कर रहे विश्राम सुख से
जब जगत के जीव सारे;
मैं भटकता खोजता हूँ
विश्व में अपना बसेरा!
खा रहा हूँ ठोकरें मैं
शान्ति-सुख से हीन होकर!
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर?

भाग निकला एक दिन
उस लोक से मुँह मोड़कर मैं;
स्वर्ण - पिञ्जर और सुन्दर
क्षीर - भोजन छोड़कर मैं !
क्या कमी थी, जो वहाँ से
हो गई मुझको निराशा;
चल दिया चुपचाप सहसा
सीखचों को तोड़कर मैं !
लुप्त होती जा रही अब
शक्ति मेरी क्षीण होकर !
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

खींचता अब भी मुझे क्यों
हाय, गृह का मोह मेरा ?
हो रहा पल-पल करुण यह
व्योम का आरोह मेरा !
एक दिन जिसने मुझे
प्रतिशोध से पागल बनाया,

कर रहा व्याकुल वहीं क्यों
आज फिर विद्रोह मेरा ?
हँस रही चिर - मृत्यु मेरे
शीश पर आसीन होकर !
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

एक तिनके के लिये मैं
आज किसके पास जाऊँ ?
कौन है ऐसा, कलेजा
चीरकर जिसको दिखाऊँ ?
स्वार्थ के संसार में अब
कौन फिर होगा सहायक ?
कौन-सी तरु-डाल में प्रिय,
नीड मैं अपना बनाऊँ ?
मैं पड़ा हूँ शुष्क - मरु में
जल-बहिष्कृत मीन होकर !
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

मत कहो, मैं भी कभी
बेसुध किसीके प्यार में था;
थे सभी आराम; मैं भी
प्रेम के संसार में था!
पैर में थीं बेड़ियाँ; कड़ियाँ
करों में थीं मनोहर!
आज समझा—मैं प्रणय के
लौह - कारागार में था!
पार कर वह द्वार, आया
आज मैं स्वाधीन होकर!
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर?

सुन रहा मैं दूर—अपने
सहचरों का हास्य चंचल;
हो गया अतिशय - क्षुधा से
मैं मलिन कृशकाय - दुर्बल!
आ चुके निज घोंसलों में
जब सभी पंछी जगत के;

रो रहा मैं ही अकेला
विश्व में हतभाग्य केवल !
हो रही वाणी विफल
मेरी गगन में लीन होकर !
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

जानता हूँ सभ्य जग का
मैं न जीवन शिष्टतामय;
और, है मुझको किसीसे
भी यहाँ कुछ भी न परिचय;
मैं किसीका हूँ न; मेरा
है यहाँ साथी न कोई !
कौन अपनाकर स्वजन-सा
दे सकेगा आज आश्रय ?
कौन हँस स्वागत करेगा
अतिथि-सुख से पीन होकर ?
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

थक गये ये पंख श्रम से;
हो रही अब भार काया !
लोचनों के सामने यह
घोर-तम का राज्य छाया !
भाग्य है प्रतिकूल, मुझको
रोकतीं सारी दिशाएँ;
कौन-से अपराध का प्रिय,
आज यह परिणाम पाया ?
एक-ही में तो कठिन था;
एक से अब तीन होकर—
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

मैं बढ़ूँ किस ओर, पथ का
जब न कोई अन्त पाता;
चल रहा, मुझको चलाता
जिस तरह मेरा विधाता !
कर सकूँगा मैं किसीसे
प्रिय, न भिक्षा का निवेदन;

क्या न कोई हो सकेगा
अब स्वयं-ही अन्न-दाता ?
और, वापिस हो सकूँगा
क्या कभी न नवीन होकर ?
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

यह मरण-त्यौहार प्राणों का;
मलिन - गोधूलि - वेला !
जा रहा असहाय-सा मैं
मार्ग में बिलकुल अकेला !
आज मुझसे पूछते हो
क्या किया मैंने जगत में ?
हाय, इन दो-ही दिनों में
कौन-सा संकट न झेला ?
मैं जरा - सा डोलता,
असमर्थ चिर-प्राचीन होकर;
उड़ चला तो; पर कहाँ
जाऊँ कहो, उड्डीन होकर ?

२५, अक्तूबर, ३६]

———

पटने के गोलघर से

अरे कौन तुम अन्ध - सुरापी,
गन्ध - सुरा पी रक्त
लुप्त - ज्ञप्ति हो सुप्त पीवरी -
निद्रासक्त अशक्त ?
कहाँ दर्प जीवन का यौवन -
प्रभा-प्रज्ज्वलित तिग्म ?
कैसा स्वप्नावेश - वेष ओ
भीरु - भावना - भक्त ?

महा - मोह - रत चक्रवात - वातूल - विघूर्णित ;
नष्ट - भ्रष्ट हो रहा जाति - जन - जीवन चूर्णित !
चित्त - वृत्तियाँ उग्र - वासना - पंक - निमज्जित
विगत - पूर्व के स्वाभिमान को करतीं लज्जित !

यह मानव - कंकाल, जरा - जड़ क्लैव्य - प्रखंडित ;
और, तुम्हारा ऐ अजेय, युग गौरव - मंडित !
हिम - नगेश - प्रति - स्पर्द्धी शिर, उन्नत - चिर - उज्ज्वल,
देता कर्मोद्यम - आशा - सन्देश महाबल !

काल - पृष्ठ पर अंकित किसका
यह इतिवृत्त अगौन
अति अतीत की ओर युगों से
इंगित करता मौन ?
विस्मृत कर स्वातन्त्र्य - मन्त्रणा,
पाञ्चजन्य - निर्घोष ;—
सोये हो इस पाप - तल्प पर
कहो, कहो तुम कौन ?

यह परिवेष्टित क्षितिज - मेखला,
सुरसरि परिखाकार ;
किस कुज्झटिका के विरोध में
धृष्ट, अचल, दुर्वार !
विपुलायत घंटापथ - चारी,
चारुशील वंदारु ;

ओ कौटिल्य, कहाँ वह तोरण?
चन्दन - वंदनवार?
लोट रहा पथ - रेणु - निकर पर जहाँ पुरन्दर;
मोह - भ्रमित अलकेश, चकित रह जाता हिमकर!
वही पाटलीपुत्र, विश्व का गर्व निरन्तर—
दलित हो रहा आज विपद - पद से दुर्दमतर!
अस्त हुए शत वार काल - भैरव कल्पान्तर;
कोटि - कोटि युग, शत शताब्दि, शत - शत मन्वंतर;
आज शून्य कान्तार, शून्य वन, उपवन - प्रान्तर;
सिंह - सैन्य के बने भीरु गोमायु विपरिचर!
लक्ष - लक्ष प्राणों की धारा
निर्जीवित, निर्पक्ष;
ऊर्ध्वबाहु, किस कुटिल राहु का
पूर्ण - ग्रास यह पक्ष?
जलती पुर - विशिखा में लोहित
अग्नि - शिखा विक्षिप्त;
देव, तुम्हारे वक्षःस्थल पर यह
किसका वर - कक्ष?

वह वनराजि, तमाल - तालिका ;
वहाँ नरक - तम - कूप !
प्रस्तुत था सिकता - बेला पर
वाजिमेध का यूप !
जब करता विद्रोह हृदय में
उद्वेलित उल्लास ;
हिल उठता यह स्तूप मृत्तिकामय,
वर्तुल, विद्रूप !

परिवर्तित हो चला विश्व का मूर्त्त कलेवर ;
आज पुंश्चली - वृत्त सभ्यता पुनः पुरःसर !
ले जावेगा कहाँ स्रोत यह प्रखर - प्रखरतर ?
रोक ; रोक ओ, यह प्रपात - व्याकुलता क्षण - भर !
सुन, यह किसका विकल कंठ - स्वर दुर्बल - कातर ;
अश्रु - विवश क्रन्दन विधुरा का युग निशि - वासर !
पुरुष - पुरातन, कर भविष्य का अब अवलोकन ;
भर उर में पौरुष, अनन्त - बल, नभ - तल - विचरन !

सागर - पार, द्वीप - द्वीपान्तर में
वह धर्म - प्रचार ;

आनुगत्य - भावों का उद्गम,
निखिल - लोक - विस्तार!
रोम - रोम में होम - सुरभि की
एक वेदना व्यक्त;
ओ असिधारा - पर्व - मनस्वी,
खोल पुरा का द्वार!

धधक रही प्रस्तर - प्रस्तर में,
शिला - शिला में चंड
वह प्रताप - ज्वाला विभूति - भव,
विद्युन्मुखी अखंड;
यह कैसा पाखंड अरे, यह
कैसा अध्याहार?
साहस किन अक्षुण्ण भुजा-
दंडों में है दोर्दंड?
महाकाल के अग्र पथिक, ओ विप्लव - वाहन;
एक बार फिर रणचण्डी का कर आवाहन!
आमन्त्रित हों पुनः भैरवी, झंझा, सावन;
हुहुङ्कार, वह विस्फुलिङ्ग, विस्फोट भयावन!

धूमध्वज, ओ अरुण क्रान्ति के तरुण पुरोहित;
उठा अग्नि-वीणा, हों सुर-नर-अप्सर मोहित!
महाप्रलय-नटराज, अरे ऋत्विज, अघमर्षण;
अनियन्त्रित कर महाकाश से उल्का-वर्पण!
जगा कलिङ्ग, महाकोशल; जग
गये पंचनद, वंग;
महास्थविर, कण-कण में बहती
नवयुग-मदिर-तरंग!
खोया किस अतलान्त-गर्भ में
वह उत्सर्ग-रहस्य?
मगधराज! कब यह समाधि तव
होगी, बोलो भंग?

उठ, उठ ओ कृतान्त के सैनिक!
सर्वनाश के वीर;
चन्द्रगुप्त के उपासंग, उठ
ओ दिग्विजयी तीर!
चिर-विश्रान्त, अरे ओ दुर्मुख,
अकर्मण्य रण-क्लान्त;

जाग, आज इस समरांगण में
हास - विलासाधीर !
मचल रहा उद्ग्रीव महागांडीव - धनुर्धर ;
अट्टहास में भारत - रण के भीम - भयंकर !
उठ अशोक, काषाय - वसन - उद्दीप्त - हुताशन :
आत्मज्ञान - विमूढ़ नरों में भर नवजीवन !
हे समुद्र की राजलक्ष्मि, तज वन - निर्वासन ;
हा - हुताश, आओ हताश ! संबल - संत्रासन !
यह ज्वाला, भूकम्प, घूर्णि, विध्वंस, बवण्डर !
नाच, नाच, नाराच; अरे, ओ ताण्डवकर हर !
अमृतपुत्र, ओ अन्तःपुर को
कौतुक - लीला - मग्न;
आलोड़ित कर फूँक मंत्र नव,
यह गोधूली - लग्न !
आज, जाति के क्रम - विकास का
नव इतिहास प्रशस्त ;
जाग, जाग ओ मृत्यु - वीर के
उन्मद नर्तन नग्न !

———

१०, नवम्बर, ३४]

शरद्-मिलन

आज, शरद् हो रहा तरंगित
श्वेत - काश - वन में अभिराम;
पड़ा अचेत दिगन्त-शयन पर
थककर झंझानिल उद्दाम!
दशो दिशाएँ कर जल-प्लावित,
विदलित कर उपत्यका - ग्राम:
करता अन्तरिक्ष में सुख से
अब पावस-महेन्द्र विश्राम।

दुर्लभ हुई मराल - मालिका,
छिपे हिमांचल में घन - श्याम;
आज, शरद हो रहा तरंगित
श्वेत - काश - वन में अभिराम।

छोड़ गया वंजुल - कुंजों में
वर्षानिल अन्तिम निःश्वास;
एक-चरण तप करती सरसी—
तीर बलाका - श्रेणि उदास।
बजी मधुर दिग्वेणु, मुक्त हो
चला कालिमा से आकाश;
करने लगे सरस सारस-रव
पुनः कलापी का उपहास!

उठ, वनवासिनि! उठ, आया वह
उदयाचल से स्निग्ध प्रकाश;
छोड़ गया वंजुल - कुंजों में
वर्षानिल अन्तिम निःश्वास।

शिथिल वज्र - निर्घोष; श्रान्त
मेघों ने पाया अब अवकाश;
किस मदान्ध ने दिया चंचला
चपला - बाला को निर्वास?
हाय, कहाँ वह दोला-मंगल?
आम्र - मंजरी का उल्लास?

किस निर्मम ने किया मल्लिका के
यौवन - स्वप्नों का नाश ?
आज, कौन गूँथेगा वेणी ?
बाँधेगा मृदु - कवरी - पाश ?
शिथिल वज्र - निर्घोष; श्रान्त
मेघों ने पाया अब अवकाश।

नयन खोल हे विश्व-बालिके !
हुआ देवता का आह्वानः
कर ले फुल्ल-कोकनद-शोभित
स्वच्छ-सरोवर-जल में स्नान।
छोड़ वसन जम्बाल-मलीमस,
विहँस पहन ले नव-परिधानः
कर शृंगार, लगा मधु-मलयज,
लोचन-चपल-शरासन तान !
फैला दे द्रुत पत्र - पत्र पर
अपनी अनुपमेय मुसकानः
नयन खोल हे विश्व-बालिके,
हुआ देवता का आह्वान !

पा ले, पा ले प्रिये ! प्रेम का
एक विरह - विह्वल आश्लेष;
सुन, सुन, अग्नि-कोण से लाया
कौन आज प्रिय का सन्देश ?
तज विभ्रम - आवेग हृदय का,
कर नव - गृह में वर्ष - प्रवेश;
आज, यूथिका - वन में रोता
वर्षा का अन्तिम उन्मेष !

चुप अतीत में रक्षा-बन्धन,
श्रावण गया, भाद्रपद शेष;
पा ले, पा ले प्रिये ! प्रेम का
एक विरह - विह्वल आश्लेष !

सजा शस्य-मुकुलों से आँगन,
वेश्म - द्वार पर पल्लव - प्रान;
ले कुंकुम - अक्षत की थाली,
गन्ध-पुष्प से सज प्रस्थान।
आज शून्य वायव्य-क्षितिजतल,
नीरव वर्त्म, शून्य ईशान ;

उदित अगस्त्य हुआ दक्षिण में
श्री - प्रसन्न ले अर्घ - प्रदान।
उठ, लोपामुद्रे ! तू छायापथ में
कर यौवन - जय - गान;
सजा शस्य-मुकुलों से आँगन,
वेश्म - द्वार पर पल्लव - प्रान।

नील-नील नयनों में अपरा-
जिते ! प्रचुर भर लो मृदु-प्यार;
शेफाली, लुट जाय तुम्हारी
गन्ध - मूर्च्छना में संसार !
सजे प्रदीप-मालिका घर-घर,
उड़े केतु, नव बन्दनवार;
नाचें जय - यात्रा - उत्सव में
किन्नर - सुर - गन्धर्व - कुमार !
आज, शरद हो रहा तरंगित
श्वेत - काश - वन में साकार;
नील - नील नयनों में अपरा-
जिते ! प्रचुर भर लो मृदु-प्यार।

२३, सितम्बर, ३५

तितली

तितली, तितली ! कहाँ चली हो
नन्दन - वन की रानी - सी ?
वन-उपवन में, गिरि-कानन में
फिरती हो दीवानी - सी !
फूल-फूल पर, अँटक-अँटक कर
करती कुछ मनमानी - सी !
पत्ती - पत्ती से कहती कुछ
अपनी प्रणय - कहानी - सी !

यह मस्ती, इतनी चंचलता
किससे अलि ! तुमने पाई ?
कहाँ जा रही हो इस निर्जन
मदिर उषा में अलसाई ?
सोते - ही - सोते मीठी - सी
सुधि तुमको किसकी आई ?
जो चल पड़ीं जाग तुम झटपट
लेते - लेते अँगड़ाई !

कितना मोहक अहा, तुम्हारा
छोटा-सा तन है सुकुमार!
अखिल जगत के लावण्यों का
मानो, एक यही हो सार!
अयि, अनङ्ग की सफल दूतिका!
पाकर रति-रानी का प्यार,
आज चली हो झंकृत करने
किस तपसी के उर के तार?

यह मोहावृत विश्व तुम्हारी
छबि पर मुग्ध बना प्यारी;
सरस तुम्हारे हाव-भाव पर
विस्मित है जनता सारी!
कहो, आज कैसे इस वन में
भूल गई पथ सुकुमारी?
बलिहारी अयि चिर-यौवनमयि,
तुम पर स्नेह-सुधा वारी!

उड़ती हो जब मुक्त - गगन में
सांध्य-जलद के तुम पर खोल;
उठ जातीं सौन्दर्य - सिन्धु में
अचिर तरङ्गावलियाँ लोल!
सजल कल्पना की छाया में
मानस को पावस - हिन्दोल
बना अभी तक झूल रही है
सजनि, तुम्हारी छबि अनमोल!

अरी, स्वर्ग की परी! उतर तुम
कैसे पड़ीं विजन वन में?
हाय, छोड़ मन्दार - तल्प को
कहाँ आ गईं निर्जन में!
क्या श्मशान, क्या कुसुम-कुंज;
तुम कुछ न सोचती हो मन में!
हे कोमल-पद-गामिनि, विचरो
मत इस कंटक - कानन में!

शाप-भ्रष्ट उर्वशी न क्या तुम ?
शकुन्तला तापस-बाला ?
किस निष्ठुर दुष्यन्त कन्त को
पहनाओगी वरमाला ?
सजनि, तनिक सुरभित तो करती
जाओ मेरी मधुशाला !
दमयन्ती, किस निष्ठुर नल से
पड़ा आज तुमको पाला ?

फूलों-फूलों से रस लेकर
सखि, क्या तुम नित करती हो ?
किस नीरस के हृदय-कोप को
रस से बरबस भरती हो ?
कौन भाग्यशाली है वह, जिसपर
निशि-दिन तुम मरती हो ?
हरती हो अलि ! किसकी सुध-बुध,
जब स्वच्छन्द विहरती हो ?

करती हो तुम कहाँ वास? किस
कलस्विनी सरिता के तीर?
किस वानीर - कुञ्ज में निर्मित
आलि! तुम्हारी मंजु कुटीर?
बहता है क्या सजनि! वहाँ भी
मन्द - मन्द स्वर्गीय समीर?
क्या खाती हो? क्या पीती हो?
किस वापो का निर्मल नीर?

अयि, प्रेयसि! अप्सर-कुमारिके,
यह कैसा प्रिय - प्रेम - प्रलाप?
गाती जाती हो मदमाती,
मुसकाती हो अपने - आप!
खिला विश्व-मानस-मुकुलों को,
खींच अधर पर सुख - सुरचाप;
अहे राग - रंजिते त्रिवेणी,
हरने आई क्या भव-ताप?

सतरंगी अम्बर - विमान - सी
नीली, पीली औ' काली;
डगमग क्यों करती हो मलयज के
झोंकों में मतवाली ?
इन्द्रधनुष - निर्मित तरनी - सी
पुलकित कर डाली - डाली
हरियाली के तोयधि में खे
रहा कौन तुमको आली ?

अरी, कौन-सी कुशल तूलिका से
चित्रित तुम छबिराशी ?
हो सजीव प्रतिमा किस प्रिय की ?
किसके अधरों की प्यासी ?
कहो, कौन-से कविर्मनीषी की
तुम कोमल कविता - सी
मन्द - मन्द मालिनी - छन्द में
करती हो कुछ क्रीड़ा - सी ?

रूप - सरोवर के चिर-शीतल
वारि - वीचियों से निर्मल
सद्यः - स्नाता - सी आई हो
लहरा कनकारुण कुन्तल;
उड़ा तुम्हारा चंचल अंचल,
पीकर पावन छबि - परिमल
मन्द पवन लड़खड़ा रहा है
विजन वनों में बन पागल !

आओ, आओ कुसुमित कर सखि !
उपवन की क्यारी - क्यारी;
बैठो मेरे भाव - लोक पर
तुम त्रिलोक से हो न्यारी !
राजदुलारी, तुम पर सुरपुर की
परियाँ हों बलिहारी !
बिठा भारती - मन्दिर में
आरती उतारें सुकुमारी !

१३, फरवरी, ३३]

नीराजन

प्रेम - देव - निवेदिता ;
व ल्ल री हूँ मैं कि सी के
अश्रु - जल से सेविता !

वेदना की गोद में खिल,
काँप मैं उठती स्वयं निज
विरह के निःश्वास से हिल;
रागिनी हूँ मैं किसीकी
उँगलियों से परिचिता !
स्वप्न में स्मृति के विकल-मन,
चौंक मैं पड़ती स्वयं सुन
निज हृदय का मधुर - स्पंदन;
यूथिका हूँ मैं किसीके
स्पर्श-स्वर से पीड़िता !

नैश - कारा में विचंचल,
निज चरण - ध्वनि से स्वयं मैं
खोल देती विफल दृग - दल;
वन्दिनी हूँ मैं किसीके
अधर - मधु से वंचिता !

प्रेम - देव - निवेदिता;
वन - लता हूँ मैं किसीके
मोह में अपराजिता !

एक युग का प्रिय-निवेदन,
छवि - सुधा का पान कर कब
तृप्त होंगे तृषित लोचन?

रूपसी हूँ मैं किसीके
रूप में मन - मोहिता!

जो कहीं हो जायँ दर्शन,
तो सफल आराधना, चिर-
काल का यह भक्ति - पूजन;

मानिनी हूँ मैं किसीके
मान से चिर - विस्मिता!

आज तो खुल जाय बन्धन,
मिलन की भ्रमरावली से
गुंजरित हो हृदय - मधुवन;

मोहिनी हूँ मैं किसीके
ध्यान में आनन्दिता!

११, अगस्त, ३७]

कवि की मृत्यु

आज, हुआ दिनमान तुम्हारा अधःपतित हे जर-कवि,
इस गोधूलि-मलिन छाया में संध्या की। तमसा-छवि
एक गूढ़ मायालिङ्गन में निश्चल, सुप्त, अचेतन
महामृत्यु की विपुल शान्ति-सी; बढ़ता जाता प्रतिक्षण
कोलाहल-चीत्कार भयानकतम श्मशान में निर्मम
अर्द्ध-दग्ध मनुजों का। जलती रक्त-चिता खाण्डव-सम
इस विवर्ण प्रदोष-वेला में। देखो, दूर क्षितिज पर
अस्त-प्राय-सा व्यस्त-प्रतीची नभ में निष्प्रभ दिनकर।
किस अशेष उत्पात-सशंकित दिग्मण्डल यह लोहित?
शनैः शनैः हो रहा व्योम से जीवन-गान तिरोहित
वंशी के अन्तिम गीतों-सा। मृत्यु-दण्ड अभिशापित
अपराधी-सा इस विशाल तरु-शाखा से आलम्बित

तोड़ रहा दम लटक श्वास तव। हे हतभाग्य दिगम्बर,
देख रहे हो तुम कबसे जीवन-सागर के तट पर
नर्तन यह उद्दाम तरङ्गों का भीमाकुल! गर्जन
क्षुब्ध सिन्धु का। शिला-पृष्ठ पर फेनों का आलोडन।
सुनते हो तुम अट्टहास-ध्वनि भैरव की; रण-ताण्डव
सर्वनाश का। प्रलय-रुद्र का कम्बु-नाद, डमरू-रव!

अशुभ मुहूर्त्त तुम्हारा करता क्रन्दन कौशिक बनकर
शाल्मलि की विकराल बाहुओं पर प्रति-क्षण अति-कातर
कर्कश-ध्वनि में। इधर-उधर उड़ते जतुकाकुल निशिचर
दुर्दिन बन इस सांध्य-तिमिर में फैलाकर अपने पर
मृत्यु-विवर से निकल-निकल। आशंकित पृथिवी सारी।
दूर, विपिन में एक बार ही जम्बुक-गण भयकारी
हा-हा-रव कर उठे अचानक आकुल; ध्रुवतारा बन
उदित हुए हैं पाप तुम्हारे जन्म-जन्म के भीषण
प्रिय, दिगन्त के एक छोर पर। नक्षत्रों में अगणित
हुई तुम्हारी कलुष-कहानी युग-युग की अनुवादित
इस विचित्र लिपि में अम्बर की। घोर तमिस्रा काली
क्षण-ही भर में विभावरी की ढँक लेगी मतवाली
सारी वसुन्धरा को अपने तिमिरांचल में कज्जल;

निद्रित नयनों में निशीथ के लघु - लघु स्वप्न विचंचल
कौतुक - चरण करेंगे विचरण। रुक जायेगी धड़कन
महासृष्टि के वज्र - वक्ष की; बन्द जगत के लोचन;
एक सरल शिशु - सा चेतनता खो समस्त भूमंडल
हो जायेगा महाकाल के मृत्यु - अंक में निश्चल
क्षण ही भर में।

और, इधर भी हाय! तुम्हारा जीवन
हे कवि, महानिशा के तम में होता जाता प्रतिक्षण
क्रूर - कालिमा - ग्रसित। आज, तव राका-वदन सुदर्शन
पड़ा मरण के भीम - राहु के दंष्ट्रों में अति - भीषण!
हाय, तुम्हारी अनुपस्थिति में क्या न रहेगा भूतल
वैसा - ही सुखमय - शोभामय? वह परिहास - कुतूहल
क्या न विश्व के मानस को कर देगा रस-से छल-छल?
एक बूँद जल ले लेने से, सागर - जल में अविरल
होता जितना अन्तर हे प्रिय! उतना भी परिवर्तन
उठ जाने से नहीं तुम्हारे होगा कभी अकिंचन
इस जग में निश्चय। हे जड़-कवि, किसने किया तपोच्युत?
चिन्ता क्या? हो जाओ अब तुम मरने के हित प्रस्तुत!

प्रथम-प्रथम जग के जीवन में वह अवतरण तुम्हारा
बाल-तरणि-सा; नव-किरणों से भरा भुवन-तल सारा;
नव-पल्लव-सा कोमल अवयव; बाल - विहग - सा कलरव
माता के सुकुमार-अंक में; नीरज - दल - कोमल - नव-
नील - विलोचन। दोष-हीन वह दृष्टि सरलतम निस्पृह;
रहता मधुर-हास्य से शैशव - जनित जगत - मंगल - गृह
मुखरित मृदु-गुंजित। जगती से प्रथम-प्रथम वह परिचय!
अधरों पर अम्लान दिवा-निशि अकलुष आकुल विस्मय
पुंजीभूत भ्रमर-गुंजन-सा राशि-राशि। नव - कौतुक,
नव - क्रीड़ा, नव-वयस-चपलता; नव-जीवन का उत्सुक
राग - रहित अनुराग। भावना-लीलाओं का नर्तन :
पान किया तुमने जननी का अमृत - सदृश पय पावन!

इसके बाद किशोरावस्था; सागर-सरिता-संगम।
उठा क्षितिज को तज रवि नभ में। मत्त निखिल जड़-जंगम;
वयः-सन्धि वह; हृदय - मंच पर इच्छाओं का गुंजन।
माधव की मर्मर-पदध्वनि ले आया मलय-समीरण।

तदुपरान्त मध्याह्न; प्रलय का द्वादश रुद्र प्रतापी
लेकर निज सम्पूर्ण तेज - बल जलने लगा सुरापी

जग के मस्तक पर दर्पी; मल गया पदों में जावक
कौन सुकेशी किसी प्रात में ? अङ्ग - अङ्ग में पा व क !
रोम - रोम में नव - उद्दीपन; स्नायु - स्नायु में स्फूर्जन;
शिरा-शिरा में नवल-रुधिर का विद्युत मय आन्दोलन।
प्राणों में आवेग, हृदय में कम्प, दृष्टि में मोहन :
भावों में उल्लास, विचारों में जीवन, उन्मादन
गति में। वाणी में दावानल। आया यों नव - यौवन
आँधी-सा सहसा आँगन में मेरे उड़ा रजोकण
अन्ध-कामनाओं के।

लेकिन, रह न सका वह वासर !
शेष हुआ सर्वस्व; स्वप्न-सा आज हुआ मरणापर
वह युग भी। लो, देखो; आई जरा ! जीर्णतम आनन
शुष्क-पत्र-सा। दन्तहीन मुख; पतझड़-सा जर्जर तन।
श्वेत केश हो गये तुम्हारे कुसमय में ही। नस-नस
शिथिल हो गई श्रान्त-पथिक-सी। तव दुर्बल कटि बरबस
धनुष-चाप-सी झुकी स्वयं-ही। देखो, आयु-दिवाकर
डूब रहा वह दूर-क्षितिज के धूमिल अस्ताचल पर
आज आप-ही भग्न-मनोरथ। तुम भी हे कवि-अवनत,
हो जाओ अब महामरण के लिये शीघ्र ही उद्यत !

तब भी दिन ऐसे ही होंगे, ऐसे ही निशि-वासर
—जब न रहोगे तुम इस जग में ! आवेगा नित हिमकर
इसी तरह वसुधा पर अपनी किरणों से कर पुलकित
तृण-तृण का अन्तर। कलरव से पिकी करेगी कूजित
कानन-कानन को। वसन्त में द्रुम-द्रुम में नव-पल्लव
फूट पड़ेंगे शाखा-शाखा से; कोलाहल-उत्सव
बन्द न होगा कभी एक पल भी। सुषमा की धारा
बहा करेगी जग के आँगन में कर कूल-किनारा
आप्लावित नव-रस से तब भी यों-ही; विश्व-तपोवन
मुखरित होता नित्य रहेगा प्रेम-मंत्र से उन्मन !
ग्राम-वीथि में गूँज उठेगा नवल-वधू का नूपुर
तब भी ऐसा ही कल-रव कर। मूर्च्छित कर यौवन-उर
पथिक-प्रिया का विरह-गीत होगा मारुत में कम्पित
शरत-व्योम के पार किसी संध्या में। तब भी अगणित
सुन्दरियों का दल पनघट से लौट करेगा गुंजित
अपने चपल-हास से पथ का एक-एक कण; कुसुमित
तब भी होंगे पुष्प वनों में। युवती-गण का कंकण
अपने उन्मद झनत्कार से लायेगा मृदु-कम्पन
अखिल-लोक के रसिक-हृदय में; तुम न रहोगे केवल

इस जगती में नित कौतुकमय मेरे पथिक असम्बल !
पड़ी कहीं होगी तव कंचन-काया यह रज-धूसर
विस्तृत जग के एक कोण में। प्राणहीन यह सुन्दर
कान्त-कलेवर तव खोजेगा स्थान कहीं भू-लुंठित
किसी समाधिस्थल में नीरव। उस दिन होगी कुंठित
सारी करुणा जग की; जीवन का सारा श्रम निष्फल;
व्यर्थ विधाता का होगा बल-पौरुष; रचना-कौशल !
उस दिन होगा अमृत-कलश भी रिक्त, सुधाकर शत-शत
कर न सकेंगे अपनी ज्योत्स्ना से मानव में परिणत
तव पाषाण - शरीर; विफल-सा होगा व्रत - जप - पूजन;
ला न सकेगा कोई तुममें फिर उस दिन नव-जीवन !

फूट पड़े थे एक दिवस तुम सहसा तमसा-तट पर
क्रौंच-मिथुन-वध देख। तुम्हारा भावुक-कोमल अन्तर
करुणा से भर गया; शोक वह दुःख-जनित परिवर्तित
श्लोकों में तत्काल हो गया। किसके प्रति आकर्षित
होकर तुमने प्रथम-बार था किया मंत्र-उच्चारण
वेत्रवती की कुंजों में। था, वह तो पुण्य-तपोवन !
ऋषियों का आश्रम; वनवासी का क्रीड़ास्थल पावन।
करुणामय था वह पहला कवि। व्याकुल होकर जिस क्षण

झंकृत किया काव्य-वीणा को, स्वयं शारदा आकर
बैठ गई वाचाल तुम्हारी वाणी पर करुणाकर!
तुमने भी सानन्द किया तब कलित कल्पना-रथ पर
विचरण दशो दिशाओं का; नग-नदी-वनानी-सागर,
अखिल विश्व, पाताल, स्वर्ग-भू-अम्बर; किया विचित्रण
चरित विचित्र महावीरों का त्रेतायुग के पावन;
पार हुए भव-वारिधि कितने असुर-नाग-नर-दानव
पकड़ तुम्हारी स्वर्ण-लेखनी-नौका; तुमने अभिनव
लिखा ललित इतिहास मनोहर भरत-वंश का; उज्ज्वल
दाशरथी की पुण्य-कथा। मसि-धारा में तव निर्मल
अवगाहन कर मुक्त-केशिनी मलिना पर्वत-दुहिता
बनी पवित्र स्वयं-ही अनुपम-निरुपम भव की कविता।
पाया नूतन जन्म प्रकृति ने।

इसके बाद सुशोभित
तुमने किया अवन्तिपुरी को; एक बार फिर नन्दित
वसुन्धरा हो गई तुम्हें पा। राज-सभा आलोकित
उज्जयिनी की रहती तव प्रतिभा-शशि से जग-वन्दित
निशि-वासर। संसार तुम्हारा करता था आराधन;
कल्पों के पश्चात तुम्हींने गाया था वह गायन,

मंत्र-मुग्ध हो गया जिसे सुन त्रिभुवन। तुमने पाया
राजेश्वर से विभव-कीर्ति-सम्मान; विश्व की माया
लोट रही थी तव चरणों पर दासी-सी। सिंहासन
रिक्त तुम्हें लख हो जाता था धराधीश का तत्क्षण
देव, तुम्हारे लिये। कंठ में पहना दी जय - माला
स्वयं भारती ने निज हाथों से; उत्कण्ठित सुर-बाला
रहती तव दर्शन-हित निशि-दिन। हो उठता अन्तःपुर
आन्दोलित तव उत्तरीय के वात-स्पर्श से आतुर।
लक्ष - लक्ष कंचन - मुद्राओं से तत्काल पुरस्कृत
हुआ तुम्हारा एक-एक पद। पीकर तव चरणामृत
कितने नर हो गये अमर। तुम अग्रगण्य चिर-वन्दित
नव-रत्नों की कवि-गणना में अनामिका-स्थित; खंडित
रहते खल तव तरुण तेज से। निष्प्रभ कोविद-मंडल
रहता, ज्यों रवि के प्रकाश में तारक-वृन्द; धरातल
मुखर तुम्हारे यश-कीर्तन से। रहते कितने इच्छुक
ढोने को पालंक तुम्हारा दिव्य - मनोहर; उत्सुक
स्वयं राज-महिषी रहती थी दास-दासियाँ लेकर
सदा उपस्थित होने को तव सेवा में। थे अनुचर
भाव तुम्हारे और कल्पना थी सहचरी तुम्हारी।

प्रणय-पाश में बँध आई थी ललिता काव्य-कुमारी;
निखिल जगत था बना तुम्हारे गीतों का अनुगामी;
और, आचरण करता था चिर-सेवक-सा भू-स्वामी !

बाँध दिया अपने गीतों से अखिल विश्व का अन्तर
एक सूत्र में तुमने, उपमाओं के हे जादूगर !
प्रथम - प्रथम भेजा था तुमने मेघदूत को लेकर
प्रणय-मिलन-सन्देश यक्ष का अलका में चिर-सुन्दर
दूर, प्रिया के पास। उर्वशी उतरी स्वर्ग-सदन से
पाकर इंगित मधुर तुम्हारा; कलित किंकिणी-स्वन से
लुब्ध-नयन विस्मय - विस्फारित कर समस्त पृथिवी के
अकस्मात हो गई एक दिन अन्तर्धान। सुधी के
चकित हृदय में जलती अब भी उसी रूप की ज्वाला।
भुवन-विमोहन शकुन्तला वह अनुपम तापस-बाला
लोध्र-रेणु से अपने चरणों की जगती में अंकित
वह रेखा कर गई मिटेगी जो न प्रलय-तक। गुंजित
हृदय-हृदय से यशोगान तव होगा निशि-दिन निश्चय;
सर्वोत्तम शृङ्गार कला का !

किन्तु, न वह भी मधुमय
वर रह सका अनश्वर; सहसा एक दिवस तुम चंचल
छोड़ चले इस धरणीतल को कर समस्त जग से छल।
किस अनन्त की ओर उड़े तुम मुक्त-विहग-से निर्भय
महाकाल का वक्ष चीरकर ? विस्मृत कर मधु परिचय
उज्जयिनी का तुमने लोचन मूँद लिये करुणामय
चिर-दिवसों के लिये। तिरस्कृत सुन्दरियों का परिणय,
महाराज की सखा-भावना, पुर-लक्ष्मी का आदर;
बिदा माँग ली हन्त, एक दिन तुमने भी ठुकराकर
प्रेम - मान, सर्वस्व विश्व का; जीवन का वर सारा !
उस दिन उमड़ पड़ी थी रेवा - शिप्रा की जल - धारा
कूल तोड़कर। नगर - नगर में हाहाकार करुणतम
छाया। राज-भवन में, पुर में, अवन्तिका में निर्मम
घिर आये थे शोक - जलद। हो गया प्रान्त-वन-जनपद
घन-विषाद के अन्धकार से व्याप्त निमिष में। उन्मद
रक्त-चिता जल उठी गृहों में; पुर-विशिखा में भीषण,
लोकारण्य, पण्य - वीथी में; छाया करुणा - क्रन्दन
ग्राम - ग्राम में पुरवासी का। उस दिन जगती का क्रम
पल-भर को रुक गया। सनातन नियम शिथिल, श्लथ संयम।

मुख्य द्वार पर शून्य भवन के शुष्क-म्लान नव-तोरण
पुष्पों का। झुक गई पताका दुर्ग-शिखर पर शोभन।
देवालय का शंख - घोष अवरुद्ध; प्रभात - समीरण
लुटा हुआ - सा। व्याकुल रोते नगरी में वन्दी - जन।
प्रकृति हताश, उदास चराचर, शून्य दिगन्त, खमण्डल;
मार्ग - मार्ग में क्रन्दन करते फिरते नर - नारी - दल
अवन्तिका के। देश - देश में, प्रान्त - प्रान्त में क्रन्दन;
धूम - शिखा हो गई यज्ञ की मलिन - वेशिनी तत्क्षण।
विद्युत - गति से समाचार यह दुःख - जनक द्रुत-व्यापक
हुआ गगन-वारीश-भुवन में। विदिशा से कोशल तक
एक वेदना फैल गई थी—एक प्रलय का कम्पन।
रुदन किया था उस दिन जग ने।

और, आज भी रोदन
वैसा - ही संतप्त प्राणियों का; बरसाते लोचन
अश्रु अनेक व्यथित मित्रों के, शून्य - कक्ष में निर्जन,
गोष्ठी में एकान्त, समिति में। पुरजन-परिजन-बान्धव:
कितने ही शुभ-चिन्तक रोते तव-स्मृति में चिर-अभिनव
फूट - फूटकर आर्द्र - कण्ठ से। विरह - वेदना - पीड़ित
बिलख रहे सर्वत्र नरों के विकल समूह अपरिमित।

महा - निशा में तारक रोते; रोती जननी प्यारी
करके याद तुम्हारी।

यों - ही रोयेंगे संसारी
युग-युगान्त-तक तव-चिन्तन में। तुम न रहोगे केवल
इस असार जगती में; लेकिन अचल रहेगा भूतल।
आवेगा प्रतिवर्ष जगत में ऋतुपति, मधु का उत्सव
जागेगा उपवन - उपवन में; कर देगा कोकिल - रव
छाया - वन के दिवा - स्वप्न को भग्न। मन्द - पद नूतन
मलयानिल उच्छ्वास भरेगा कुंज - कुंज में; गुंजन
मधुपों का मृदु पुलिन-पुलिन में खिला नलिन का आनन!
तुम न रहोगे केवल जग में; लेकिन, कानन - कानन
तब भी होगा कुसुमित। प्राची में अपूर्व अरुणोदय
स्वर्ण-वर्ण शिखरों पर नग के। राशि-राशि मधु-विस्मय
पुष्प - पुष्प में, पत्र - पत्र में भर जायेगा मादक;
देख सकोगे तुम न दृश्य वह लेकिन सुषमोत्पादक
प्रकृति-नटी का। सुन न सकोगे विहगों का कल-कूजन।
छू न सकोगे किसी वस्तु को। और, किसी का यौवन
दुर्लभ होगा हाय, तुम्हारे लिये। लुप्त सब अनुभव।

आ न सकेगी कोई वाधा; बन्द न होगा उत्सव;
जगती की आनन्द - रागिनी; मधुबाला का नर्तम !
तब भी वही विनोद निराला; वही हास - मधु - वर्षण;
तुम न रहोगे केवल जग में; रख न सकोगे मुख में
एक घूँट भी; ले न सकोगे भाग सृष्टि के सुख में।
लेकिन तब भी चला करेगा राग - रंग नव - कौतुक
महा - विश्व के नाट्य - निकेतन में । मधु-लीला-उत्सुक
नारी - नर मधु - पान करेंगे। तुम न रहोगे केवल
हे मेरे वैरागी, तब भी वही अमित कोलाहल;
और, वही उल्लास - बाँसुरी बजा करेगी प्रति - दिन।
जग में हाय, उदासी, केवल तुम न रहोगे लेकिन !

तुम न रहोगे, किन्तु, रहेगी जग में एक कहानी;
जला करेगी अखिल - विश्व के उर में प्रेम - निशानी
दीप-शिखा-सी निशि-दिन; तुमको याद करेंगे प्राणी
सारे जग के युग - युगान्त तक बहा दृगों से पानी;
किन्तु, कहाँ होगे तुम तब - तक—देगा इसका उत्तर
कौन जगत में ? तुमको खोजेंगे सरिता - सर - निर्झर
वन-वन में व्याकुल-विरही-सम गुंजित कर गिरि-उपवन
निज कलकल-रोदन से। प्रति दिन विकल विहंगम उन्मन

स्वर्णोदय में कीर्ति - कथा कहकर तव प्रीति - पुरस्सर
करुण - विलाप करेंगे ; वन - वन में मृग-शावक सुन्दर
पन्थ तुम्हारा अवलोकेंगे भूल हाय, रोमन्थन !
तुम न रहोगे, किन्तु, रहेगा नाम तुम्हारा पावन
जीवित युग-युग तक इस जग में। अचल एक ध्रुवतारा;
निश्चल यह सौन्दर्य सृष्टि का सदा रहेगा सारा !
रह जायेगी ज्यों - की - त्यों ही यह विशाल भू सुन्दर;
लौट सकोगे तुम्हीं न केवल इस जगती से जाकर !

क्षण - भर अश्रु बहा नयनों से पुनः करेगी नर्तन
मालविका प्रारम्भ निकुंजों में वसन्त की; दो क्षण
रोदन कर मंजुलिका फिर भर देगी कानन - कानन
अपने मुक्त - हास्य से परिचित। किसी कुंज में निर्जन
अनुसूया भी सखी - विरह में अतिशय कातर होकर
रो लेगी पल - भर नयनों के उज्ज्वल मोती बोकर
निष्ठुर जग के ऊसर उर में; किन्तु, वही फिर जीवन
सरिता - जल - सा कल्लोलित नित; झूलेगी प्रमुदित मन
नव - कदम्ब की शाखा से उन्मुक्त-कुन्तला। क्षण - भर
वन - कन्या भी लिपट माधवी - लतिका से दुख-कातर,
पूज्य-पिता के चरणों पर गिर, सब सखियों से मिलकर,

बिदा माँगते समय कण्व के आश्रम से चिर - सुन्दर
रो लेगी; फिर भूल जायगी एक निमिष में, पल में,
जीवन का सारा दुख - क्रन्दन सुख के कोलाहल में,
पति के अन्तर में प्रवेश करते ही।

अहे, उ दा सी!
लौट सकोगे तुम न किन्तु, इस जग में हास - विलासी
पुनर्वार। तुम कर न सकोगे फिर सुख का आस्वादन;
यौवन का उपभोग; कामना का एकान्त - निमन्त्रण!
आयु - शेष हो गई तुम्हारी; शिथिल जगत का बन्धन;
क्षण ही भर में रुक जायेगा वक्षस्थल का स्पन्दन
आज तुम्हारा; इन्द्रिय - इन्द्रिय भग्न-यंत्र-सी निष्क्रिय;
आया अब आह्वान यहाँ पर महा - काल का अप्रिय!
डूब गया सौभाग्य - दिवाकर दूर क्षितिज में खोकर
सारा तेज, सकल गौरव निज आज; उठो हे कविवर,
तुम्हीं सुप्त आलस्य-गोद में। क्यों विलम्ब अब इतना?
देख रहे गोधूलि - लग्न में किस जीवन का सपना
आत्म - विभोर? उठो हे अच्युत, जागो निद्रा खोकर;
हो जाओ अब तुम भी मरने के हित तत्क्षण तत्पर!

पुनः प्रथम आषाढ़ धरा पर आवेगा धारण कर
नवल वेश। निस्सीम गगन को छा लेंगे नव - जलधर
उमड़ - उमड़ कर; पुनः उड़ेगी श्वेत - वलाका - माला
अन्तरिक्ष में। हाय, कहाँ वह सरला तापस - बाला ?

प्रथम वारि-कण नव-वारिद के पड़ते ही पृथिवी पर
जब होकर उच्छ्वसित धरातल के समस्त विरही - नर
अश्रु - अर्घ्य लेकर खोजेंगे तुमको उ त्सु क - लो च न,
कौन सदय तब हाय, करेगा उनका दुःख - विमोचन ?

कहाँ गया वह स्वर्ण-काल, उज्जयिनी का बल-वैभव
अतुलनीय ? विक्रम-सा शाशक गुण-ग्राहक ? कौशल नव
कला - तीर्थ, विज्ञान - केन्द्र; वह विद्या-पीठ सनातन।
किस अतीत के अन्धकार में लुप्त हुआ वह जीवन ?

सजल - नेत्र वर्षा-संध्या में जब झिल्ली-स्वर-झंकृत
पंचदशी सुन्दरी किशोरी भूषण - वसन - अलंकृत,
अंग - राग - वासित, अंगों में पूर्ण - काम यौवन - मद;
जला दीप, रख भवन-द्वार पर, आयेगी कोमल-पद
विहँस तुम्हारा स्वागत करने को, तब कौन हृदयधन
बाहु - पाश में उसे बाँधकर, कर लेगा आलिङ्गन ?

मधुर प्रेम के सहज - भाव से व्यर्थ आज प्रणयासव ;
विकल मेघ - प्रासाद - शिखर पर राजहंस का कलरव !

राज-तिलक से रहित किया है किसने आज तुम्हारा
श्री-ललाट ? नयनों से बहती क्यों अविरल जलधारा
श्रावण - जल - सी ? हे वनवासी, रुक्ष तुम्हारे कुन्तल
युग-स्कन्धों पर पवन-प्रचंचल। रुख कपोल निज कोमल
दक्षिण करतल पर एकाकी देख रहे संध्या - छवि
शून्य दृष्टि से। अस्त-प्राय-सा तव पाण्डुर जीवन-रवि।
शुष्क अधर निस्पन्द तुम्हारे; मलिन हुआ पीताम्बर ;
भिक्षुक - से क्यों पड़े हुए हो सारा गौरव खोकर
इस निर्जन में ? देह तुम्हारी चिर-अनशन से दुर्बल।
विजन - नदी - तट पर बैठे हो लाद मृत्यु का सम्बल
अपने क्षीण पृष्ठ पर किस की प्रत्याशा में ? जागी
कौन वेदना अभ्यन्तर में हे मेरे वैरागी ?
सूख गई तव वक्षस्थल की वकुल - मुकुल की माला
छिन्न - पत्र - सी। रुद्ध तुम्हारा आकुल कंठ निराला
वाष्प - आर्द्र। लो, देखो वह अस्ताचलगामी दिनकर
आत्म - घात कर करता अपने पापों का निष्ठुरतर
प्रायश्चित सुनिश्चित ; कोई मानव नहीं यहाँ पर।

घाट छोड़कर चला गया है नाविक; अचल चराचर;
शून्य दिशाएं, तुम्हें पार करना ही होगा पागल
आज, अकेले जीवन-नद की लहरों को उच्छृङ्खल!

हाय, आज क्यों देवलोक में चंचलता-कोलाहल
इतना? छाया मार्ग-मार्ग में पारिजात का परिमल।
कुंज-कुंज से उड़ता सौरभ; द्वार-द्वार पर सुन्दर
वन्दनवार सजाते सस्मित देव-कुमार मनोहर!
गृह-गृह में सुरपुर के होता कौतुक-लीला, गायन
कोकिल-कण्ठी सुर-बालाओं का मंगलमय; उन्मन
यह किसका संकेत हुआ जो, वीथि-वीथि में कोमल
बिछा आम्र-पल्लव-दल नूतन। सुर-सरिता का शीतल
पुण्य-सलिल ले स्वर्ण-कलश में खड़ी षोडशी सादर
धोने किसका चरण-कमल-रज? नन्दन-वन में हँसकर
मचल-मचल क्यों चलती रम्भा सखियों का दल अनुपम
लेकर आज संग में अपने? किसका स्वर्ग-समागम
ध्यान-भङ्ग कर रहा मेनका का? चंचल वन-बाला
गूँथ रही उपवन-उपवन में मंजरियों की माला
किसके हित? आनन्द-पुरी में सुर-समाज क्यों सारा
मिलनातुर-उत्कण्ठित? बोलो, किसका प्रियतम-प्यारा

आज मिलेगा चिर - दिन के उपरान्त स्वयं ही आकर
शून्य - भवन में ? किसके स्वागत में समस्त पुर-प्रान्तर
हीरक - मणि - रत्नों से सज्जित अस्त - व्यस्त ? दूर्वादल,
गोरोचन, मृग-नाभि सजाकर कनक-पात्र में उज्ज्वल
स्वर्ग - सुन्दरी करती किसकी विकल प्रतीक्षा ? प्रतिपल
देख रहे देवेन्द्र स्वयं - ही राह किसीकी चंचल
दुर्ग - सदृश प्रासाद-शिखर से । रह - रह उत्सुक होकर
वातायन से झाँक रहे नीचे ; असीम - जन - सागर
उमड़ पड़ा जो विकल राज-पथ पर आकाश-विहारी ।
जुड़ी अधीर प्रवेश - द्वार पर देव - मण्डली सारी
तव पूजा करने को सम्मुख अक्षत - चन्दन लेकर !
मंगल - शंख बजा ; आ पहुँचे देव - दूत चिर - सहचर
ले अभिनव सन्देश मृत्यु का ; उठो, उठो हे कविवर !
हो जाओ सत्वर अब तुम भी मरने के हित तत्पर ;
तैल शेष हो गया; तुम्हारा काल-वायु से हिलकर
जीवन - दीप बुझा । लो, देखो, डूब गया अब दिनकर
पश्चिम-नभ में ; हाय, तुम्हीं क्यों तब आलस में अनुगत ?
हे कवि, मरने के हित तुम भी हो जाओ अब उद्यत !

५, फरवरी, ३७]

बुलबुल

किस प्रेम-देवता से निर्जन वसन्त-वन में
तू रूठ आज आई ?
इस माधवी-लता से क्या सोच हाय मन में
कह, प्रीति यों लगाई ?
बहता मलय-समीरण परिमल-विनम्र, कोमल
दिश-दिश, भुवन-भुवन में;
तू ढूँढ़ती किरन बन किसकी प्रसन्न-छबि कल
प्रति कुंज में, सुमन में ?

तेरी मनोज्ञता के हम मन्त्र-मुग्ध मधुकर,
तू दिलरुबा हमारी;
अलि, किस पतिव्रता के वन्दन-विनत वदन पर
निज रूप-राशि वारी !
गुंजित जहाँ कथा से सुख की सदैव रहता
कल नीड वन-खगों का !
अविरल वहीं व्यथा से बन अश्रुधार बहता
क्यों एक-एक झोंका ?

वह कौन है निराला ? बतला तनिक पता तो;
किससे लगन लगी है ?
किसका प्रणय-पियाला पीकर सखी, बता तो;
यों वेदना जगी है ?
री नागरी नवेली, सच बोल आज किसकी
मनुहार चाहती तू ?
पगली, पड़ी अकेली इस वीथि में सिरिस की
कह, क्यों कराहती तू ?

समझा सजनि, दुलारा दिलदार यार तेरा
अब हो गया विदेशी !
ठुकरा, सनेह सारा वह ले लिया बसेरा
किस लोक में सुकेशी ?
तूने न की प्रतीक्षा क्यों प्यार के सहारे ?
घर से निकल गई क्यों ?
दी यों वियोग-दीक्षा किसने बिना विचारे ?
यह रीति अलि, नई क्यों ?

नित गूँथता सबेरे पावन प्रसून - माला
तेरे लिए प्रवासी;
दुख में प्रमत्त तेरे निज देश से निकाला
कवि डोलता उदासी !
ये झाड़ियाँ कँटीली, तू गुलबदन रँगीली;
खोया कहाँ सितारा ?
सुखमा निरख छबीली, इस तान पर सुरीली,
हारी हिरण्य - हारा !

नीलाभ घन - गगन में उड़ती अमन्द मंजुल
तू स्वर्ग की परी - सी !
क्षण में, विपिन-विजन में देती बहा असंकुल
मधु की विनिर्झरी - सी !
छबि किस मदन-पिया की सीधे नलिन - नयन से
उर में अशान्त पैठी ?
ऐ नूर पर्शिया की, किस भारतीय मन से
तू स्नेह जोड़ बैठी ?

उस पार क्लेश-कातर जग की अबोध पीड़ा
सुख - स्वप्न हेरती है!
इस ओर डालियों पर व्याकुल महा-अधीरा
तू तान छेड़ती है!
जल की तरंग में तिर, आता अबन्ध खुल-खुल.
तेरा उदास गाना;
कह तो तनिक सुनूँ फिर; बुलबुल, कठोर बुलबुल;
फिर भी वही तराना!

विरही विधुर दिशा में जाती अबाध गति से
वह रूप-सी सलोनी;
इस चंचला निशा में तू अलि, मचल न रति से,
सूरत बना न रोनी!
रोता सिसक - सिसक कर माली मलिन वनों में
सजनी, जहर - कनी तू!
दिल कौन ले गया हर? अलि, बोल किन क्षणों में
मदहोश यों बनी तू?

कुसुमित कदम्ब - नीचे करता विनोद नटवर
वह नाच - नाच छलिया;
तू नेत्र क्यों न मींचे? वंशी बजा - बजाकर
लेगा लुभा सँवलिया!
यह भव कपट - कहानी, संसृति अपार सपना;
तू षोड़शी किशोरी!
इसकी यही निशानी; रानी, यहाँ न अपना,
ममता अरी, न छोड़ी!

अलि, चीरकर हृदय को अपनी कसक अनोखी
सबको दिखा न भोली;
देखा किसी सदय को, जिसमें भरी न शोखी?
करते सभी ठठोली!
भावे अगर रुदन ही, तो जा किसी विपिन में
रख दे निकाल हियरा!
रो - रो विभोर मन-ही- मन यों निशीथ - दिन में
प्यारी, जला न जियरा!

१९, अप्रैल, ३४]

नारी

आदि - शक्ति - रूपा - जननी तुम,
गौहर की जौहर - ज्वाला;
दानव - सैन्य - व्यूह में शोभित
चामुण्डा - सी विकराला!

एक हाथ में अमृत, दूसरे में
लेकर विप का प्याला;
गजगामिनि, आ रहीं झूमती
किसे पिन्हाने वरमाला!

इतनी गूढ़ समस्या जग की,
ऐसा जटिल-जाल उलझा;
क्या शताब्दि ?—मन्वन्तर में भी
सुलझेगा न कभी सुलझा !
हारे स्वयं विरंचि तुम्हें रच,
हारी दुनिया बेचारी !
कौन कहे, किसमें है साहस ?
ऐसी कौन बला नारी ?

तुम उर्वशी रूपसी, रम्भा
पुतली अन्धवासना की;
सती-सतीत्व और सावित्री,
प्रतिमा भक्ति-भावना की !
सीता-हरण, बाल कृष्णा के,
राधा का वह गुप्त प्रणय;
गरल-पान तुम कृष्णकुमारी का,
गार्गी का ज्ञान-निचय !

जगती का समस्त प्रतिबन्धन,
सागर का लीला-लोडन;
नारि, तुम्हारी एक-एक
चितवन में शत-शत भूकम्पन!

अभिमन्त्रित हो अलकाकर्षण-
द्वारा शलभों-से प्रतिक्षण
रूप-राशि की अग्नि-शिखा में
निपतित होते नर-जीवन!

प्रथम उदधि-मन्थन की दुर्लभ
नवनीतोपम फल-प्रदा;
अश्रु दृगों की, तुम अधरों की
हास, केलि-लीला-प्रमदा!

भद्रे! विश्व-विजयिनी; अबला
तुम न, शक्ति का रूप-विनाश;
आह, रक्त-रंजित पृष्ठों पर
लिखा तुम्हारा है इतिहास!

मदन-दहन की भस्म, चिता का
रौद्र, ज्योति द्वादश रवि की;
तुममें कुसुमों की कोमलता
और कठिनता है पवि की!

महामरण की तुम विधात्रिणी,
मंजुलता सावन-घन की!
फणि का-सा विषदन्त तुम्हारा;
छवि मृदु, गन्ध कमल-वन की!

तुम्हीं महाभारत की नेत्री,
सूत्रधार लंका-रण की;
मेघदूत की सजल कल्पना,
कर्त्री कठिन भीष्म-प्रण की!

एक ओर तुम भेज स्वामियों को
समरांगण में घनघोर;
मुग्धे, अग्नि-शृँगार रचातीं
तुम मृदु और दूसरी ओर!

वशीकरण तुम मन्त्र, वशीकृत
तुमसे त्रिभुवन के प्राणी;
व्याध - वेणु - वाणी वह, बँधता
सुन जिसको मृग अज्ञानी!
करुणा की अवतार, दया की
मूर्ति, प्रेम की वरदानी!
कैसे शुभे, बन गईं निन्दा-
कलह - प्रपंचों की खानी?

तुम पत्नी का विमल पतिव्रत,
माता का ममतार्द्र दुलार;
सहज स्नेह भगिनी का, रूपा-
जीवाओं का कृत्रिम प्यार!
गौतम का विद्रोह, भर्तृहरि का
विराग, वन - निर्वासन;
शुक-तप, तपोभ्रष्ट तुम कौशिक;
वृद्ध च्यवन का चिर - यौवन!

यह मादक सौन्दर्य, काँपता
विश्व त्रास - शंकित लोचन ;
अयि तिलोत्तमे, आपस में ही
जूझ मरेगा लड़ कण - कण !
नारद का संमोह, पतन हरि -
हर का ; विमोहिनी माया !
ऐसी तुम प्रहेलिका, जिसको
समझ न जग अब तक पाया !

सरल-वक्र, शीतोष्ण, अमृत - विप,
मृदुल - कठोर, आग - पानी !
मिथ्या-सत्य, घृणा-परिणय, लघु-
विपुल, हिमानी - पाषाणी !
नचा रहा जिसका कटाक्ष जग,
केवल मात्र दुराशा - सा ;
एक शब्द में ही कह देना
उस नारी की परिभापा !

१५, जून, ३४]

तापसी

कोलाहल से दूर विश्व के,
निश्चल मौन प्रशान्त,
कौन—कौन तुम एकाकिनी ! हो
इस वन में एकान्त ?
कोमल-कान्त कलेवर को कर
यम-नियमों से दान्त
सुमुखि, करोगी द्रवीभूत किस
निष्ठुर का उर-प्रान्त ?

अपने वैभव पर इतराती
कुल्याएँ गम्भीर
बहती जातीं तट - तमाल—
ताली - कुञ्जों को चीर !
तुम युग - युग की ले आकांक्षा,
इच्छा तरल अधीर
तपा रही हो तप - आतप में
कोमल अमल शरीर !

खिल पड़ते मकरन्द-कनों से
जब जग के उद्‌गार,
अलस अतृप्त दृष्टि से क्षण-भर
सुषमा-सृष्टि निहार;
शनैः-शनैः उठते अन्तर के
दवा निदारुण ज्वार
चिर समाधि में तब तन-मन
कर देतीं एकाकार!

कर अशोक जब कोक-कोकियों को
आता नवप्रात,
उठा भैरवी के मृदु स्वर में
भ्रमरों का आलाप;
तुम प्रचण्ड-मार्तंडमुखी सह
दर्पोज्ज्वल उत्ताप,
शुचिस्मिते! किस छबि पर
हँस पड़ती हो अपने आप?

पूर्ण साधना-लीन तुम्हें लख,
सहज - अस्तित्व बिसार
आ - आकर गो - व्याघ्र परस्पर
करते प्यार - दुलार;
निकल उटज से तब तुम भी नित
बीन - बीन नीवार
उन्हें खिलाती हो सहास - मुख-
मुद्रा से सुकुमार!

यह त्रिगुणा मेखला; जघन, उर
सकल प्रसाधन - त्यक्त
सजनि, तुम्हारे दृढ़ निश्चय को
कर देते अभिव्यक्त;
कुटिल कुशांकुश - परिचालन से
भक्त्यासक्त, अलक्त
क्षीण, नवीनांकुर - अंगुलियाँ
अहह, बहातीं रक्त!

होम - प्रसूत पूत जब करती
धूमराजि निर्देश
हविर्घृताहुति - सुरभित-
वासर का रजधूसर शेष,
अपनी पर्णकुटी में करतीं
तुम अविलम्ब प्रवेश
अक्षसूत्रप्रणयिनि, लहरा
कलमाग्र-सुपिङ्गल केश !

बाल - बल्लवों के संगीतों की
प्रति - ध्वनियाँ भग्न
टकराकर फिर फिर जातीं जब
नील क्षितिज से नग्न;
देवदारु की चारु सुशीतल
छाया से संलग्न—
तुम किसके मांगल्य - ध्यान में
हो जाती हो मग्न ?

पाहन पृष्ठ-शयन, गिरि-दरियों का
विश्रामागार,
फलाहार, भस्माङ्गराग, कटु-
कंटक - विपिन - विहार;
शाल-माल, सुविशाल चीड़-द्रुम-
पंक्ति, हिमस्तर - स्तार
प्रकृति - प्रेम - पय - पालित प्रिय तव
पावन - सा परिवार !

पावस की जलधार, शिशिर का
महा - महिम हिम - पात;
हेमन्तानिल, पतझड़ की
घड़ियों का घाताघात !
ऋतुपति का मृदु मलय-वात, शुचि-
का आरक्त प्रभात,
सह लेता सुकुमारि, तुम्हारा
कैसे पेलव गात ?

बाहुलता-उपधान, अरण्यावास,
विविध व्यवधान,
अरुणातन्द्रित मुद्रित नयनों पर
तप - ज्योति महान,
परिज्वलित पञ्चानलमाला-
स्थिति, वल्कल-परिधान
बलि होंगे किसके चरणों में
नलिनानन अम्लान ?

किस अतीत के अन्धकार-युग को
कर पार अपार
लाते शैल - तुषार - हार परि-
वेष्ठित स्तूपाकार;
हरिचन्दन - विलेप, कस्तूरी-
कृत - कुच - युग - शृंगार;
और, उशीर - समीरान्दोलित
वातायन के द्वार!

१६, जुलाई, ३३]

अप्रस्तुता

आज, बाँधो नहीं कवरी; सखि, न गूँथा हार !
और सुमनों से किया तुमने नहीं शृङ्गार !
अश्रु-छलछल लोचनों में, क्यों न जाने, एक
वेदना-सी वस्तु कोई कर रही अभिषेक !
आज कैसे कर सकोगी प्राणधन को प्यार ?
हाय, बाँधी नहीं कवरी; सखि, न गूँथा हार !

उपवनों में तज गया दक्षिण - पवन निःश्वास;
कब न फूटा मधु - निकुंजों में वसन्तोल्लास!
सखि, तुम्हारा म्लान आनन यह प्रसाधन - हीन;
दग्ध सिकता-राशि पर अचपल पड़ा मन - मीन!
खेलता अधराधरों पर क्यों न मंजुल हास?
उपवनों में तज गया दक्षिण - पवन निःश्वास!

मिलन-वेला में सजनि, क्यों आज विरहोच्छ्वास?
विकच कुसुमों से भरा तुमने न कल कच-पाश!
बन गई कैसे सुहागिनि, हाय इतनी क्रूर!
पोंछ डाला कब कहो, सीमन्त का सिन्दूर?
सच बताओ तो, दिया किसने तुम्हें निर्वास?
मिलन-वेला में सजनि, क्यों आज विरहोच्छ्वास?

आज, आये हैं तुम्हारे देवता सुकुमार;
और तुम बैठीं भला गृह - कोण में लाचार!
सुमुखि, करतीं क्यों न उठकर शीघ्र स्वागत हाय?
हो रहीं किस चिन्तना में यों शिथिल निरुपाय?
अहह, क्यों दृग-श्रोत से बहती अमित जल-धार?
आज, आये सखि, तुम्हारे देवता सुकुमार!

द्वार पर कब से खड़े सुकुमारि, प्राणाधार;
औ' नहीं तुमने सजाया ललित - वन्दनवार!
कौन दे आसन? विहँस कर खींच लावे कौन?
हाय, कब तक तुम रहोगी इस तरह अभिमौन?
खोल देतीं क्यों न उठकर अर्गला इस बार?
द्वार पर कब से खड़े सुकुमारि, प्राणाधार!

आज क्यों इतनी निठुर तुम, और यों अनुदार?
शुभे, किसके शाप से जीवन बना निःसार!
लो, विलोको तो तनिक उनकी सहमती सृष्टि;
भावना करुणा - छलाछल, स्नेह - कातर दृष्टि!
कर रहीं क्यों मार्ग उनका शोभने, दुर्वार?
आज क्यों इतनी निठुर तुम, और यों अनुदार?

हो गया पश्चिम-जलधि में तपन कब का अस्त;
जल रही दिन की चिता आकाश में संत्रस्त!
मधुकरों को सौंप अन्तिम - बार चुम्बन - दान;
मूँद लीं आँखें कमलिनी ने निरख अवसान!
आह, कब तक तुम रहीं गृह - काज में यों व्यस्त;
हो गया पश्चिम - जलधि में तपन कब का अस्त!

खिल उठी शर्वरी-गन्धा, सुरभि - पागल प्राण;
किया अबतक भी न धारण सखि, नवल परिधान !
है पड़ा दीपक वहाँ यों ही हताश—उदास;
शून्य गृह, एकान्त आँगन; अलस तमसावास !
क्या किसी खल ने तुम्हारा है किया अपमान ?
खिल उठी शर्वरी - गन्धा, सुरभि - पागल प्राण !

रुक रहा मधु - भार - नत मृदु-मन्द सौरभ - वाह;
खोल वातायन सजनि, क्यों दे न देतीं राह ?
कौन-सी छबि - साधना यह, स्वप्न का आभास !
आज क्यों अलि, मिला तुमको कुछ नहीं अवकाश ?
हाय, मर जाये न घुटकर अधखिली - सी चाह ;
रुक रहा मधु-भार-नत मृदु-अलस सौरभ - वाह !

प्राण - वन में आज, कैसा व्याप्त हाहाकार ?
हृदय - सागर में उठा किस भाँति फेनिल ज्वार
हो रहा निष्फल युगों की शान्ति का आयास !
लुप्त-सा मानस - क्षितिज से क्यों अनन्त-प्रकाश ?
आह, क्यों झंकृत न होते मदिर उर के तार ?
प्राण - वन में आज, कैसा व्याप्त हाहाकार ?

लौट जायेगा अतिथि क्या ले निराशा - भार ?
कर सकोगी क्या न तुम स्वागत - समुद - सत्कार ?
शयन - मन्दिर में तिरस्कृत, मौनकृत, सुनसान
खिल उठेगी क्या तुम्हारी फिर न मधु - मुस्कान ?
आज, क्या होगा न अर्पण भावना - उपहार ?
लौट जायेगा अतिथि क्या ले निराशा - भार ?

आज, कैसे कर सकोगी तुम रभस - अभिसार ?
रोम के पाथोद - कानन में तडित - संचार !
अवयवों में रस न, स्पन्दन - रहित यौवन - बन्ध;
तनु विभूषण-हीन, अंचल में न परिमल - गन्ध !
विधुर तृष्णांकुर जगे क्यों आज बारम्बार ?
हाय, कैसे कर सकोगी तुम रभस - अभिसार ?

माँग लो री, माँग लो ना प्रेम का वरदान;
आज करतीं क्यों नहीं आनन्द - मधु का गान !
मेंहदी मल अँगुलियों में, मुसकिरा कर बोल,
आज मधु-हिन्दोल में सखि, दोल दो, दो दोल !
कल - अलक - धनु पर चढ़ा लो तीक्ष्ण - वेणी - वाण;
माँग लो री, माँग लो ना प्रेम का वरदान !

अर्द्ध - निशि की स्तब्धता में ऊँघता मधुमास
कुसुम - अधरों की सुरा पी, माधवी के पास !
सुन्दरी, सुन लो; सुनो, यह गीत किसका शेष ?
कुंज - वन से कोकिला क्या ला रही सन्देश ?
चन्द्रमा ने आज उज्ज्वल कर दिया आकाश;
अर्द्ध - निशि की स्तब्धता में ऊँघता मधुमास !

आज, आओ रँग कपोलों को, हृदय को खोल;
बीत जाने दो न यों ही आयु यह अनमोल !
युग - युगान्तर की प्रतीक्षा, वासना श्रम - चूर्ण !
आज, भर दो पात्र मधु का; पूर्ण कर दो—पूर्ण !
वेध डालो प्राण चितवन के शरों से लोल;
आज आओ रँग कपोलों को, हृदय को खोल !

हँस-विहँस लो हे सुहासिनि, हँस-विहँस लो आज;
हाय, ठुकराओ न यों ही निखिल जग का राज !
खेल लो उर की उमंगों से, मधुर - साकार;
फिर न आवेगी निशा यह—फिर न यह संसार !
फुल्ल निधुवन - शर्वरी में आज कैसी लाज ?
आज, हँस लो हे सुहासिनि, हँस-विहँस लो आज !

२३, अगस्त, ३५]

पूर्णिमा

ज्योम उर मेरा विपुल, तुम
शा र दी या पूर्णिमा - सी !
पूर्णिमे, किस लोक से
आकर गई छा ज्योतिराशी ?

एक तुम अकलंक विधु इस
मर्त्य की पावन - अलौकिक;
दूसरा वह चन्द्रमा लाञ्छन-
म लि न आकाश - वा सी !
चन्द्रमा - सी तुम, तुम्हारी ही
कुमुद या वदन - छाया ?
पूर्णिमे, कोई कहे तो,
कौन चिर - राका - प्रकाशी ?
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शा र दी या पूर्णिमा - सी !

एक दिन देखा तुम्हें था
शैलजा के शून्य तट पर;
तुम खड़ी थीं विरल जल में
क्षुद्र मृणमय कुम्भ लेकर !
वीचियाँ लघु - लघु चपल
लज्जावती वन की लता - सी;
आप ही जातीं सकुच
छू - छू तुम्हें क्षण में मनोहर !

प्रथम दर्शन ही तुम्हारा
वह अमित उन्माद - कारी;
पूर्णिमे, मन ले गया हर
पूर्ण - चन्द्रानन सु हा सी !
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शा र दी या पूर्णिमा - सी !

और, इसके बाद लोचन
मिल गये फिर दर्द दिल में;
कर रही थीं स्नान तुम
कल-कंठिनी-सी सरि-सलिल में
पूर्व में उस ओर ऊषा
हँस पड़ी मानस - मधुरिमा;
इधर तव कवरी - कमल-
वन से उड़ा सौरभ अनिल में !
भर गया वन - वन भुवन
मृदु-गन्ध से मदनान्ध-मादक;
पूर्णिमे, छबि - पाश में
तत्क्षण बँधा परिणय-प्रयासी;

व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शा र दी या पूर्णिमा - सी !

और, कितनी बार फिर
तुमने दिये निज मंजु दर्शन;
पण्य में, तरु-वीथि में, जन-
मार्ग में तनु - रोम - हर्षण !
खोलकर गृह-द्वार, वा ता य न
क भी उ न्मु क्त कर द्रुत;
चकित सस्मित - मुख किया
मुझ पर अमित नित अमृत-वर्षण !
दूर से, फिर पास से
संकेत वह चंचल तुम्हारा;
पूर्णिमे, मृग - बाल - सा मैं
खिँच गया यौवन - विलासी !
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शा र दी या पूर्णिमा - सी !

फिर कभी कौतुक - चरण से
मूँद कर तुमने विलोचन,

रख दिया अपना चिबुक
साभार मुझको दे निमन्त्रण!
चपल विद्युत-स्पर्श वह
कर का कपोलों पर सुकोमल;
हो गया कम्पित-पुलक
सर्वांग मेरा विवश तत्क्षण!
और, वह शंकित पलायन
पाणि - करपल्लव छुड़ाकर;
पूर्णिमे, कलना तुम्हारे
कंकणों की वेणु-श्वासी;
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा-सी!

नित्य तब से मैं पुजारी-सा
तुम्हारे चरण-तल पर;
प्रेम-पुष्पांजलि चढ़ाता
स्तुति-निवेदन अर्घ्य देकर!
एक इच्छा पर तुम्हारी
हो गया वलि विश्व सारा;

रस हृदय का, सृष्टि का
सर्वस्व, भव के भाव सुन्दर !
भक्ति के वर में दिया तुमने
अधर - रस का कलश भर;
पूर्णिमे, वह घूँट मधु का
पी गया मैं चिर - पिपासी;
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्मिणा - सी !

हो गया कृत - कृत्य रचना
कर तुम्हारी भी विधाता;
देख तव अपरूप आनन
जलज जल से उठ न पाता !
शब्द वर्णन कर न सकते;
काव्य की उपमा लजाती !
प्रात से गोधूलि - तक
खग वन्दना के गीत गाता !
मौन फिर भी शारदा;
कल्पना चिर - कुण्ठिता - सी !

पूर्णिमे, उन्मत्त जग
तव रूप - मद पी सर्वनाशी!
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी!

स्वर्ण - चम्पक - वर्ण, तनु की
नवल - यौवन - कान्ति - लतिका;
मसृण मांसल वक्ष कर दें
पद - दलित अभिदर्प रति का!
गूँज उठता ज्योंकि अन्तःपुर
तुम्हारे नूपुरों से;
अनुसरण करने मराली-
बालिका लगती प्रगति का!
नाचने लगता कलापी;
कोकिला करती कुहू - ध्वनि!
पूर्णिमे, इतनी मधुर,
इतनी मृदुल सौन्दर्य - राशी!
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी!

माधवी-सी तुम किसी
एकान्त-वन में प्राण, खिलकर;
भर रहीं जन-हीन पथ पर
छबि-सुरभि अपनी मनोहर!
सूखते कैसे तुम्हें
अस्पृश्य ही मैं लख सकूँगा?
हाय, झड़ने को खिले क्या
फूल ये सुकुमार-सुंदर!
मैं बनाऊँगा तुम्हें निज
देवता का हार उर का!
पूर्णिमे, जाने न दूँगा
इस तरह मैं तुम्हें प्यासी;
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा-सी!

हो गया परिपूर्ण जीवन-
घट तुम्हारी प्रीति पाकर;
कर नहीं सकता कभी
प्रतिद्वंद्विता तुमसे सुधाकर!

क्षय-मुखी उसकी कला
युग-पक्ष में रहती न अचला;
और, तुमने रश्मि से
भर दी अमा मेरी खिलाकर!
सर्वदा मेरा हृदय-
मन्दिर रहे अधिवास यों ही;
पूर्णिमे, रटता तुम्हारा
नाम मानस-शुक सुभाषी!
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा-सी!

आज चारो ओर केवल
तुम मुझे बस, दीख पड़तीं;
झील में, नद में, उदधि में,
छबि तुम्हारी ही उमड़ती!
मैं जिधर बढ़ता, उधर ही
कुंज से कोई अचानक;
निकल कर आकृति तुम्हीं-
सी बढ़ मुझे आश्लेष करती!

और, कसकर बाहु से
देती अमित उन्मत्त चुम्बन !
पूर्णिमे, स्वर्गीय प्रतिमा;
मैं पतित भूतल - निवासी !
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी !

उर्वशी जैसे मिली थी
पुरुरवा को वन - विजन में;
मिल गई दुष्यन्त को
तापस - कुमारी तपोवन में !
और, पाया था पराशर ने
सुरूपी धीवरी को;
ठीक वैसे - ही मुझे तुम
मिल गई उपयुक्त क्षण में !
हाय, कैसे राहु - जग की
दृष्टि से तुमको बचाऊँ ?
पूर्णिमे, मैं प्रणय - पथ का
एक यात्री अनभ्यासी;

व्योम उर मेरा विपुल ,तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी !

रूप की पूजा सिखाकर
रूपमय तुमने बनाया;
तव दृगों में प्राण, अपना
ही तरल प्रतिबिम्ब पाया !
खींचकर लाया तुम्हीं ने
आक-तरु से कल्प-वन में;
सुनहरा संसार तृष्णा के
विजन मरु में बसाया !
तुम न करतीं आज मुझसे
प्रेम, यदि, तो सच कहूँगा;
पूर्णिमे, यह पांथ होता
कवि नहीं—अविकल उदासी;
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी !

१, अक्तूबर, ३६]

विभेद

हम दोनों में कितना अन्तर ;
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

जब तूने था मदिरालय में
मधुबाला का आह्वान किया ;
उन्मत्त तृषा से व्याकुल हो
अंगूरी - मद का पान किया !
तब मेरे अधरों पर छलकी
अति-तिक्त हलाहल की प्याली;
मैंने हल्दी की घाटी में
अपना जीवन बलिदान किया !
जब पीकर तू बेहोश पड़ा
था कहीं किसी मधुशाला में ;

मैंने प्रलयांगन में ली थी
अभिनव यौवन की अँगड़ाई ;
है बहुत बड़ा अन्तर हममें ;
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

जब होता तेरी मधुशाला में
साकी का छमछम नर्तन ;
कातर हो क्रन्दन कर उठते
मधु-लोलुप मदिरा-प्रेमी-गण !
तब मेरे आँगन में करती
गर्जन भीषण-तम रण-चंडी ;
बजते मतवाले वीरों के
रक्ताक्त करों में असि-कंकण !
जब मधु ने तुझको जीवित ही
रख दिया मृतक की श्रेणी में ;
तब मेरे निश्चल प्राणों में
विष से फिर झूमी तरुणाई ;
कैसे मैं तेरे साथ चलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

जिस दिन अधीर मदिरालय में
तेरी मदहोश पुकार हुई;
जिस दिन दीवानों की टोली
मद पीने को तैयार हुई!

उस दिन छिन गया मुकुट मेरा,
गृह-हीन राज्य-श्री रूठ चली;

उस दिन स्वतंत्रता के रण में
मेरे स्वदेश की हार हुई!

जिस दिन मधुबाला ने दी थी
मधु-सुरा पिला चिर-मृत्यु तुझे;

कर गरल-पान उस दिन मैंने
दुर्लभ्य अमरता थी पाई;
मैं मिलूँ, बोल, तुझसे कैसे?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी!

जब मदिरालस तेरे नयनों की
हो जातीं पलकें भारी;
जब मादकता में खो देता
तू मन की चेतनता सारी!

तब मैं करता हूँ सिंहनाद,
बजती अग-अग में रण-भेरी !
मैं आग लगाता पानी में;
उपजाता हिम से चिनगारी !
जब तू सँभाल सकता दुर्बल-
सा अपना भी अस्तित्व नहीं;
मैं निखिल राष्ट्र का बनता हूँ
तब एक मात्र उत्तर - दायी;
सम्भव हो मिलन हमारा क्यों ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

देखा था जिस दिन तेरे इन
हाथों में फेनिल मधु - प्याला;
रस - भींगे होठों पर तेरे
शरमाकर झुकती मधु-बाला !
पश्चिम - उत्तर की सीमा पर
उस दिन ललकार उठा कोई;
तोड़ा था किसी विदेशी ने
मेरे सुवर्ण - गृह का ताला !

जिस दिन बेखबरी आई थी,
तूने तन - मन की सुध भूली;
उस दिन दक्षिण में थोड़े - से
कुछ बनियों ने आफत ढाई;
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

थे आमन्त्रित हम दोनों ही,
वारिधि का हुआ हृदय - मंथन;
तूने पहले ही पहुँच किया
बढ़ मधुबाला का आलिङ्गन !
तुझको मधु- कलश मिला, तूने
पी लिया एक क्षण में सारा;
मैं नीलकंठ—था लिखा भाग्य में
मेरे विष का आस्वादन !
जिस मस्ती ने पौरुष - नाशक
विस्मृति - सन्देश दिया तुझको;
वह मस्ती मेरे जीवन में
अद्भुत नव - जागृति ले आई;

है एक यही अन्तर हममें;
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

तूने की प्रमदा की सेवा;
मदिरालय को आबाद किया !
जब प्यास लगी, तूने तत्क्षण
साकी - बाला को याद किया !
तू स्वार्थ-विकल; अपने सुख-हित
मद पीकर जग को भूल गया;
मैंने विष पीकर दुनिया को
सुख-शान्ति-सुधा का स्वाद दिया !
जब मन तेरा डगमग होता;
जब पग तेरे करते डगमग !
तब मैं तूफान - बवण्डर में
सिर खोल चला करता, भाई !
किस तरह एक हों हम-दोनों ?
तू मधु-सेवी, मैं विप-पायी !

जिस क्षण तेरी मधुशाला में
जुड़ते मधु-प्रेमी-गण अगणित;

साकी के एक इशारे पर
उठते सब झूम सुरा-परिचित !
उस क्षण पृथिवी की मानवता
करती होती चीत्कार विकल;
रोते जननी के अंचल में
मेरे सुकुमार क्षुधा-पीडित !
तूने अपनाया मद पीकर
कायरता - आलस का जीवन;
मैं मुसकाता हूँ शूलों में ;
मैं वनचारी, कंटक - शायी !
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी !

तेरा पथ जाता उधर, जहाँ
बहती निशि-वासर मद-धारा ;
मेरे - हित शूली, दमन, दण्ड ;
मेरा विश्राम - भवन कारा !
कर - बद्ध सदैव मनाता तू—
'मेरी मधुशाला रहे अचल !'

मैं कहता—मानव की जय हो;
निर्भय हो जगतीतल सारा!
तेरे सिर पर मधु-कलश भरा;
मैं फूँक रहा विष की वंशी!
तुझमें वसन्त-तन्द्रा; मुझपर
नवयुग की प्रलय-शिखा छाई;
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी!

जिस वक्त किया करता मधु पी
पथ में तू नित्य उपद्रव नव;
मैं कालकूट पीकर उस क्षण
भैरव बन करता रण-तांडव!
मैंने तो तेरा मधु देखा;
मधु-प्रिया और मधुशाला भी!
तू एक बार भी देख, सखे!
यह अनल-हलाहल का उत्सव!
इस विष-घट में वह उत्तेजन;
वह शक्ति, करे जो कल्पान्तर!

तू विष लखकर थर-थर कम्पित;
मुझको मदिरा से उबकाई!
कैसे हम दोनों साथ चलें?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी!

तू मद पीकर मद-मत्त बना;
महिमा मधुशाला की गाता!
पर, मैं तो अपने गीतों में
इस विष को ही चित्रित पाता!
जिन छन्दों में धारण करते
आकार स्वप्न तेरे सुंदर;
मैं उन छन्दों में बाँध व्योम से
अग्नि-कुमारों को लाता!
तेरे प्रलाप ये मद्यप के;
मैं शंख-घोष करता रण में!
हम दोनों के ही बीच खुदी
यह एक विषमता की खाई;
कैसे मैं तुझसे आज मिलूँ?
तू मधु-सेवी, मैं विष-पायी!

१२, फरवरी, ३७]

क्षणिका

कल खिली थी कामिनी;
आज ही रज में मिली
मेरे हृदय की स्वामिनी !

कल जगत के मंच पर थी;
वर्ण में लावण्य; विकसित
रूप के मालंच पर थी!
आ गई लो, आज सहसा
मृत्यु-वदना यामिनी!

कल खुले दृग-कलि-कमल-दल;
प्राण प्रिय-दर्शन-पिपासित;
अंग में छबि-गन्ध-परिमल!
जलद में पल-भर चमककर
मिट गई सौदामिनी!

दो-दिनों का अचिर यौवन;
विश्व की मधु-वीथिका में
भ्रमर, कर ले प्रणय-गुंजन!
आज की मुस्कान, कल के
अश्रु की अनुगामिनी!

१०, अगस्त, ३७]

रक्तपर्व

आज, सर्वनाश के
रण-ताण्डव-उत्सव में
भीषण, वीभत्स और
नरकानल-ज्वाला-ज्वलन्त
गाओ साम्यवाद-गान;
बोलो जय !—जय !!—जय !!!

एक निमिष, एक पल;
आया प्रथम हलका-सा झोंका एक।
चौंक पड़ा, कूदा मैं देहली से;
काँप उठे छप्पर-घर,
डोली धरा,
सिहरे तरु-लता-गुल्म !
और, इसके उपरान्त
लहरों पर लहर, घातों पर घात
तोयधि-तरङ्गों-से
झंझानिल-क्षुब्ध, मथित,
आने लगे, जाने लगे एक-एक !!

शनैः शनैः
बढ़ता ही गया प्रचण्ड वेग
उत्तरोत्तर भीमतर;
हाहाकार, चीत्कार,
महाघोर रौरव-रव ;
गूँजा विश्व-वन में क्षण में भयंकर ।
कोटि-कोटि वाणी में
कम्पित और अश्रु-विगलित
जागा स्वर-निनाद,
अमूर्त्त-मूर्त्ति ताण्डव की
जीवन-उल्लासमय ;
ओ रे वीर, ओ रे धीर !
आज, महामृत्यु के
रक्ताक्त उत्सव में जीवन-प्रद
गाओ वज्र-घोषों में साम्य-गान
बोलो जय!—जय !!—जय !!!

देखो, आह नाचती है भैरवी !
भैरव-उल्लास-मग्न, क्षुधित, पाषाणी;
कुंठित कलेवर में रुण्ड-मुण्ड-माला धर,

अनियन्त्रित - गति से अबाध !!
झूलो उर, झूलो आज
मेखला-नव-दोला पर पावस की
गा-गाकर ध्वंस-गीत,
विप्लव-आसावरी
प्रलय-प्रभंजन के मुक्त-वृत्त छन्दों में !
कंटक-विपिन में
अकंटक कुसुमों का राज्य छाया;
छत्र-मुकुट काँपता है !
ऊर्ध्वमुखी आभा में नग की
राजती है अग्निमुखी नीलाचल-वासिनी
मन्द-मन्द-हासिनी ।
गिरता है मणिमय प्रासाद-निकर
अम्बर-विचुम्बी, मनोमुग्धकारी;
दीन-हीन रंकों की,
भिक्षा-अधीर, क्षुधा-आतुर दरिद्रों की
विविध-दु:ख-तिमिर-सघन
पर्ण की कुटीरों पर ।
राजभवन, केलि-सदन ;

वासना-दुर्गन्ध - गलित, पतित,
कामिनी-कंचन-खचित
रोते दिन देख आज,
निज वर्त्तमान के।
उड़ रहा था जिन पर
वैभव और प्रभुता का यशः-केतु,
अमल-धवल रविकर-प्रभ,
वायु में,
डोलती थीं किन्नरियाँ, परियाँ ;
नूपुर-मराल-कलित चरणों से मन्द - मन्द !
चंचल हो उठता था विशाल कक्ष
वीणा-वाद्य-गानों से अविनन्दित ;
आज, वही
देख लो श्मशान - तुल्य
निष्प्राण ;
हूकते शृगाल और भूँकते हैं श्वान
सुनसान गलियों में।
हींसतीं पिशाच-सदृश
मानवों की अस्थियाँ

अभय, चर्मावशिष्ट, उद्धत-अशिष्ट-सी।
चलता नत-भार, निहत
लोक-रहित वन-पथ में
मनुजों का पद-दलित समाज
पापों का सम्बल लाद
स्कन्धों पर निराधार,
मूलहीन पादप-सा;
मर रहा अन्नहीन, वस्त्रहीन,
धन-जन-परिवार-हीन
व्याकुल समुदाय, हाय
शत-शत कङ्कालों का प्रेत-सम।

नग्न शिला टकराती घूर्णि-चक्र से;
निस्सीम सागर - जल में
उथल-पुथल, खल-बल-कल
दृश्य अमृत-मंथन का चिर-नूतन!
रोम - रोम कम्पित-से
जगती के, रम्भा-पत्र के समान
पश्चिम - पवन में।
झकझोड़—अविरल शोर;

टूटी फूट नवकलिका जीवन की
एक ही आघात में उद्दण्ड महाकाल के।
भग्न महाकारा हुई
अग्नि-रुद्र-देवता की विरुद्ध-क्रुद्ध !
दारुण कशाघात से
दुर्जय - दुर्दान्त-दर्प-
शील वीरभद्र के भयानक।
मूर्च्छित हो,
भागा भीरु सन्तरी वसुन्धरा का;
जागा मुक्त-कण्ठों में
सर्वनाश-गीत;—
बोलो जय! —जय!! —जय!!!

कलुषात्मा मनुजों की दुर्बल-मन,
चाहती तू विजय प्रकृति पर ?
भूल जा री, संहार-कारिणी
विनाश-लीला देखकर ताण्डव की!
क्षुद्रमयी, क्षुद्राकाँक्षा
ले समेट मानस में, भाग द्रुत
छोड़ स्वप्न-कल्पना !!

क्या कहा ?...करवट ली शेष ने।
ओ फणीश, भुजङ्गेश;
सच, तो...फूँक डाल जग को
अन्ध-विश्वासी, त्रशित
भून-भून अपनी प्रताप-रौद्र-ज्वाला में
काल-कूट-माला में
कर दे सुवर्ण-सा प्रदीप्त
विश्व का आर्द्र-हृदय !
हिला-हिला बार-बार
भूधर-समेत पृथिवी का आदि-अन्त;
उलट दे छत्र छत्रधारियों के
पापी, व्यभिचारियों के !!
अन्तक, श्वास-श्वास में
प्रलय-प्रभंजन-सा वितरण कर
राशि-राशि हाला नहीं—हलाहल !
विष-तिक्त कर दे कण्ठ;
स्फूर्जित उर, विद्युत-दृग !
रोवें असंख्य जम्बुक-काक
लोहित चिताओं पर
शोणित-मद पी-पीकर अति उमंग !!

वह निनाद ! —उन्माद ;
रे यही लोक क्यों ?
डगमग हो अश्वत्थ-दल से
भूलोक — द्यूलोक-पाताल ;
भुवन-चतुर्दश !!
लाभा-उपल-धूम्र-वर्षा
बरसे अनवरत भूतल पर ;
एक-एक कोने में, एक-एक रोने में !
फट जाय ब्रह्माण्ड और
निर्गत हो उससे
उज्ज्वल मुक्त-गीत-धारा
निर्बन्ध, उन्नत, अजेय
गह्वर-शिराओं में, निर्झर-दरियों में ;
चिर-परिचित, चिर-सुन्दर,
चिर-जाग्रत
जय ! — जय !! — जय !!!

ओ विराट, विद्रोही वीर !
आच्छादित हो यह मेरा
प्रस्तर-हृदय धूलि-धूसरित,

पाप-पंकिल,
अग्नि-कणिकाओं से उग्र
यौवन-शिखा की !
मानव का कलुष-कपट-छल
विकल, कलंकित !!
कर लो ग्रसित राहु-सा
जीवन-अमा-रवि को;
अन्धकार !
अन्धकार दुर्गम अभेद्य छाये
चारो ओर,
छोर पथ का न कहीं
दृष्टि पड़े विस्तृत मरु-भूमि में ।
धराकम्प, भूडोल !!
खोल अपना विकराल वदन
दौड़ो नग्न पुच्छल-सा
रौंदते जलाशय, मेरु, शून्य, झील !!!
चले कहाँ ?...ठहरो तो ;
तृष्णा हो गई क्या पूर्ण ?
जाओ मत पिपासित-ही ;

छोड़ो मत एक भी अरमान अधूरा !
हँसेंगे लोग, दुर्विनीत ;
एक-तार कर दो आज
सारा वसुधा-तल।
जिससे रहे न कोई भूप-रंक,
पाप-पुण्य, धर्माधर्म, ऊँच-नीच !!
हे दयालु, हे उदार ;
तुम विधाता के अमर प्रसाद !
कितने कल्प पर, कितने मन्वन्तर पर,
अल्प-काल के लिए
आते हो अनाहूत
अतिथि बन, वर-से अवाञ्छित
अपनी प्रखर-प्रतिभा में
आप ही ज्वलन्त, प्रकम्पित-पद।
ठहरो धृष्ट, ठहरो; जब-तक
अमरेन्द्र के द्वार पर,
नन्दन-पारिजात की कुञ्जों में
पिंगला जटा को पटक,
गाता है मेरा वैरागी कवि

अग्नि-शिखा चण्डी-सा
नृत्य-रण-कर्कश-गीत,
बेसुध हो,
ठहरो, महोलङ्ग; और
बोलो, उसीके स्वर से
क्षण भर, केवल, मिला
अपनी यह रागिनी
मृत्यु - कंठ की,
जय ! — जय !! — जय !!!

हाय रे वात्याचक्र !
इतना मन्द — ऐसा क्यों ?
मैं तो प्रतीक्षा में
ऐसे दिवस की, जब
तेरे वज्र-कम्पन से टूक-टूक तारे हों !!
ईश्वर ?—
ईश्वर कहाँ ?...कहीं नहीं।
पत्थर की पूजा कर
पत्थर ही बना है नर नृशंस।
ओट में खुदा की चोट

करता शैतान वह।
दिग्विमूढ़ यात्री - सा,
युगों से,
खोया मनुष्य अपने
अतीत की छाया में शान्त-शीत-
तन्द्रिल, मदालस, मदिरा-प्रमत्त।
दूर करो क्षुद्रता,
अहम्मद।
टूटे जड़ता का मोह-तार !
चाहिये रे ध्वंस;
एक बार ही विध्वंस !!
जोहता है कब से तुम्हारी राह
ध्वंस का पुजारी यह
मृत्युञ्जय, बोलो जय !
खोलो तो अपनी गर्त्तिका कराल,
पेट में समेट लो तत्क्षण समस्त विश्व;
सोये सारी चेतना, मनोवेदना,
भीषण रक्त-शोषक-नीति;
तुम्हारी विशाल दाढ़ों में जिह्म।

इतना मृदु, इतना सीधा क्यों ?
ओ रे प्रलम्ब-बाहु,
लाओ वज्रपात चीर उर्वी का क्षीण वक्ष,
उमड़ चले वह अनन्त पारावार;
चाट ले असीम सृष्टि,
जलमय,— स्थल, नभ, कान्तार, वन !!
केवल मैं — विद्रोही एक
उठकर अनन्त के गौरव-सिंहासन पर
देखूँ विनाश की
प्रलयंकरी शोभा को सुषमामयी
निर्निमेष नयनों से
सस्मित, रोमांच-विकल
अणु-अणु ;
बोलूँ अट्टहासों से गुँजाकर
व्याकुल दिगन्त की अन्त-रहित प्रान्त-भूमि
शक्तिमय, प्राणमय, जीवनमय
जय ! — जय !! — जय !!!

इतना परिवर्तन ; लीलामय,
एक ही निमिष तो

कुटिल रही भ्रकुटी तुम्हारी ;
और, उसी रोष-ज्वाला में क्षणिक
ताण्डव - त्रिलोचन की
भस्मसात हो गया त्रिलोक ।
इतने अनोखे खेल
खेले ऐ खिलाड़ी, तुमने
सिर्फ एक पल में — वाह !
रचे गये वर्षों में जो पुर-सौध,
बने थे युगों में जो विलास-निकेतन ;
शताब्दियों की संचित सम्पत्ति
क्षण में कर दी तुमने
अन्तर्हित, नष्ट, तिरोहित, स्वाहा !!
इतनी बुभुक्षा, इतनी पिपासा ;
कराह रही वसुन्धरा तुम्हारे हुंकारों से
ओ अजेय, अविज्ञेय ;
रोतीं मृत-वत्सा माताएँ
सद्यः-प्रसूता धेनु-सी ;
मलिन भी हुई न थी
जिनके हृदय की वरमाल परिणय की ;

छूटी नहीं मेंहदी की लाली
तलुवे से ;
स्खलित हुए न कंकण करों के।
जलती ललाट पर सुहाग - बिन्दु अब तक भी
यों ही सतीत्व तेजोदीप्त चारु ;
वधुएँ पछाड़ खा-खा गिरती हैं वही
मणि-हीन फणि के समान
जीवन-धन खोकर !
हा ! हा !!
किन्तु, ओ निर्दय ! दया
तुममें लेश-मात्र भी नहीं !
विद्युत-वेग से दौड़ पड़ते हो
अनन्त कोश, योजन अनन्त ;
चरणों से दलित कर चराचर को,
थर - थर प्रकम्पित कर
और, इस मेदिनी को मूल-सहित !
पर्वत-राज के दुर्दम्य वक्ष पर
कौंध गई बिजली-सी अनभ्र ;
वह देखो—देखो रे

टूटा हर-हरकर धवलागिरि
बालुका के गृह-सा ;
और, वह महिमामय गौरीशंकर
कंचन - शिखर भी
नगपति का
हर-हर-हर ! हहर-हहर !!
हाहाकार, वज्रपात, क्रन्दन-ध्वनि ;
लघुतर कितने ही नगण्य
अन्य शिखरों की
इति ही नहीं, सत्ता कहाँ ?
सारी तुषार-हार-मण्डित-गिरि-चोटियाँ
सो गईं धरातल पर सदा के लिए
महायात्रा-पथिक-सी श्रान्त, शान्त ;
नगाधीश, गर्वोन्नत !
कहाँ गया गौरव का मणि-मुकुट ?
पुण्य-बल-विक्रम की
यशोध्वजा ?

मृत्यु और जीवन —हः !
कितना सरल सादृश्य है, एक पल ।

देर क्या लगती कुछ बनते और बिगड़ते ?
घूम रहा परिवर्तन का धूम-रथ
घूर्णिमान उल्का-सा दशो दिशाओं में ;
क्षण में छान डालता
कितने देश, कितने प्रान्त, नगर-विजन !
रोती हैं वहीं पर दीन जातियाँ,
भूख-प्यास से व्याकुल सिसकतीं ;
और, मचतीं उसके आस-पास में
आनन्द-रँगरेलियाँ, बजती बधाइयाँ !
हाय, क्लेश-जर्जर-जीर्ण
कंगालों के शवों पर अशिव
बहता है मोद-श्रोत,
रस-निर्झरी, मदिरा-पीयूष-पयस्विनी !!
मिटा दो ना अन्तर यह छूमन्तर में ।
मृत्यु-हासिनि, रक्ताम्बर-धारिणि,
नाचो नग्न, तरणी खोल पंकिल वैतरणी में !
ओ री कालदण्ड-पाणि, इन
शक्तिहीन, धनहीन, निर्वीर्य मनुजों को
प्रहारों से कर विचूर्ण भेज दो रसातल में !!

अथवा,
दे दो अखण्ड राज्य-भोग, पूर्ण-योग ;
यह दुःसह विषमता !
लाओ नवीन-युग यौवन-मय
जीवन के कोमल पद्म-पत्रों पर !!
असहनीय हुई नरक की यह उग्र-गन्ध
उग्र-ज्वाल, उग्र-बन्ध !
धूल में मिला दो सभी
देव-स्थान, धर्मालय, तीर्थ-व्रत, जप-तप !!
पाप-पुंज, कलुष-केन्द्र ;
खलों का खमण्डल वह !
अहे महाट्टालिकारि,
रहने न दो एक भी माया-भवन जग में !
आग—हाँ, लगा दो आज
वैभव-विलास के उत्तुङ्ग रङ्ग-महलों में !!
आओ, आओ एक बार ;
बार - बार,
उमड़कर, घुमड़कर, जोरों से—शोरों से ;
घेर लो धरित्री को ।

खर-मातङ्ग-अश्वों के
भयोत्पादक चीत्कारों से करुणामय
विकम्पित धरा के प्राण ;
जैसे,
मृगदल सभीत
होता सुन व्याधा के धनुषों की टंकार।
टूटे ध्यान पंच-नेत्र शंकर का
कर्कश-स्वरों से आज,
भगवती चण्डिका के ;
और, उसी रणोल्लास - सुख में
गाओ मुक्त - कण्ठ वीर,
साम्य - गान तेजोमय, बलमय ;
बोलो जय ! — बोलो जय !! —
बोलो जय !!!

सचमुच ही बदल दिया इसने
इतिहास के पृष्ठों को ;
कितने प्राचीन गढ़, स्तम्भ, स्तूप ;
कितनी पुरातत्त्व - सामग्रियाँ
काल के प्रगाढ़ आलिङ्गन - पाश - बद्ध

सोई जन्म-जन्मान्तर के लिए !
कितने उलट-फेर, कितना तहस - नहस;
बीती पुरा, सुरापी जरा;
आया अब नूतन दृश्य सामने;—
नूतन राग, नूतन राज्य, नव देश-वेश !!
फूट-फूट निकला है उष्ण-श्रोत
गर्भ से धरित्री के तरुणोच्छ्वसित;
बाढ़-सी आई नदियों में;
धसकी धरा !
हो गई दरारें आर-पार !!
कहीं-कहीं मीलों की;
गिर रहे कोट-किले, बजती रण-भेरियाँ;
सज रही ताण्डव-उल्लास की
चारु - चित्रित नृत्य-शाला !
अग्नि-पुंज, अग्नि-ज्वाल, अग्नि - शक्ति;
टूटेगा अग्नि - लोक वन्दिनी के शिर पर !
दारुण विस्फोट यह
भैरव का काल-हास सर्वनाशी
डोला दिग्पालों का आसन

कठोर दुःशासन-सा !!
शान्ति - रूप क्रान्ति का
नर्तन यह कैसा नग्न ?
होता कामना का तरु, मरु में धरा-शयित !!
खींचो जाज्वल्यमान रेख
रथ-व्यूह में
ऐ दुरूह, भीत-सैन्य — जाल-मध्य ;
वह्नि-शिखा, महा-मेरु
कम्पन का मेघ-यान होता
विजित महाघोषों में; नवयुग का
शंख-यूथ फूँक, चल !
मार्ग-दिशा ज्ञात नहीं;
फिर भी चल, लाँघ अचल !
विघ्न-क्लेश, दुख अशेष;
बोलो वीर, बोलो उच्च-स्वर से
क्रान्ति जय ! — राज्य जय !! — देश जय !!!
जय ! जय !! जय !!!

अरे, ओ स्रष्टा ! भविष्य - द्रष्टा !!
तुम हो समदर्शी, तुम्हारे कोप से

बचता न कोई, रंक - भूमिपाल;
किन्तु, नहीं; भूलता मैं
तुम हो उच्चता के शत्रु और
दीनता के मित्र;
हे विचित्र!
अङ्कित चरित्र है तुम्हारा अगोचर-सा
जन-मन-विलोचनों में,
अश्रु-मसि से।
देख नहीं सकते हो
फूटी आँखों से भी तुम
गर्वोन्नत मस्तक किसी प्राणी का!
नवीनानुयायी!
तुम्हारे यहाँ सुधार नहीं;—सर्वनाश!!
निर्माण नहीं, विध्वंस; संहार!!!
सृष्टि तो स्वयं ही
अनुगामिनी बनी प्रलय की;
होती रचना आप कभी
विनाश के उपरान्त।
तोड़कर पुरातन - रूढ़ि, ग्रन्थियों को,

फोड़कर परम्परा-शृंखलायें
करते तुम सृष्टि नवल
जीवन और यौवन की करके अनन्त वृष्टि
पतझड़ के बाद फिर
आते मधुमास बन
जगती के मधुवन में चिर-अभिनव ;
तृण - तृण में प्रेमांकुर
द्रुमों में जगा
दाड़िम - से लाल बाल-पल्लव को !
भरते स्नेह-भावों में
बलि और साहस की ओजमयी भावना !!
तुम्हारे संहार-हार में
भरा हुआ है ऐ अपरिमेय,
सर्व-गेय
अनन्त जीवन, जागृत और यौवन !

इस नव-वसन्त के प्रारम्भ - काल में
अग्रदूत आये हो
अकस्मात
किसका सन्देश लेकर भयंकर ?

कौन इस श्री-भरी सुषमा में सुरभित
उगल रहा है गरल ?
पापी, चाण्डाल, नीच !!
मन्द - मन्द मलयानिल
मलयज-मधु-सौरभ के आलोडन में
करते क्यों हुहुंकार लोहिताक्ष, सीमा पर ?
इस प्रशान्त मानव-समुदाय के
सकरुण समवाय में
दुर्दान्त, किया तुमने यह
कैसा रण-तूर्य-नाद ?
किधर लगी है आग ?
बता तो तनिक, लपटों में जिसकी
घुट रहा दम हतभाग्य भारत का !!
गरज रहे ये कैसे विषम बादल ?
पड़ता है दिखाई धुआँ
अन्तरिक्ष में असीम किस संघर्ष का ?
एक ओर अकाल काल — कवलित
नर-कंकाल; और
उठती है दूसरी ओर तरल

तरङ्ग ऐश्वर्य - महातोयधि में
ऐन्द्रिय-लिप्सा की उलङ्ग हास्य-लीला !!
समझा ; —हाँ, आये तुम
धूम्राच्छादित क्षितिज में
अग्रदूत बनकर, उस
भावी महायुद्ध का उग्र सन्देश ले !
निष्फल कर सन्धि - साधना,
जाह्नवी की पावनी तरङ्गों पर,
अंकित कर शोणित की लालिमा,
कालिमा में श्मशानों की,
खूनी, डुबा दोगे तुम
वसुधा को रक्त में
ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, प्रवंचना से !!
'सावधान, सावधान !'
मँड़रा रहे हैं पश्चिम में बादल
प्रतिहिंसा-जनित संग्राम घन-घोर ;
भीषण भूडोल बन
आये सूचित करने क्या तुम उसी दुर्दिन को ?
बच न सकता पूर्व इस आघात से

धुन्ध-झंझावात से;
यही कहने आये हो !!
भाग लेना होगा
इस वृद्ध केशरी को भी
लोक-संहारी नरमेध-यज्ञ में !
आहुति पड़ेगी जब
होम-घृत-अक्षत-सी
शत-शत स्नेह-पय-पालित लालों की
अग्नि-कुण्ड-वेदिका पर
बहेगी रक्तधारा, अविराम ;
खिल उठेंगे रणचण्डी तृप्तकामा के
नेत्र - द्वय, रक्त - वेश ;
रक्त-केश, रक्त-देह, शेष रक्त !

सावधान ! प्राची तुम
खोओ मत व्यर्थ ही
जीवन-क्षण शुभ अमूल्य निद्रा में !!
आलस्य - तन्द्रिल विषयों में ;
हो जाओ प्रस्तुत उस सर्वनाश के लिए !!!
कैसे बचोगे आज ?

बच नहीं सकते हो किसी भाँति
भावो के भीषण रणाक्रोश से !!
वह आवेगा — आवेगा अवश्य ही ;
फैलायेगा अपना ध्वंस - जाल ;
और, तब तुम एक बार ही
अप्रस्तुत, नत-चेतन, हत-ज्ञान-से
रोओगे — धुनोगे सिर पछताकर !
कहे देता हूँ, इसीलिए
हो सावधान — वीर-पुंगव !
गाओ सर्वनाश-गीत, सुनो ;
उसकी पद - ध्वनि, हुंकार उसका !!

चमक रही है असि,
गरज रही हैं अगणित तोप-बन्दूकें
गोला-बारूद यानों से ;
आज, असि-धारा-पर्व में
छेड़ो प्राण मेरे, तुम भी
साम्यवाद - तान तीक्ष्ण ;
प्रलय-मन्द्र-रागिनी ;
नटराज,

आज, रण-ताण्डव में
बोलो जय ! — जय !! — जय !!!

टूट रहे राजमहल, फूट रहे रनिवास;
लुट रहे नाना वास-निकेतन-
उद्यान !
किन्तु, इन झोपड़ियों को क्या ?
मर जाय मानव-समाज सारा
अपनी ही कृपाण की धारा में
पाप-ताप-कारा में रुद्ध ;
पर, क्या इन कंगालों को ?
बन्द हुईं मिलें, गिर गईं चिमनियाँ ;
बन गया नगर श्मशान ;
लेकिन, इन काले आनन पर
अब भी वही हास्य, वही लीला ;
वही लहरी !
जीते रहें युग-युग तक
बाहुओ में बल, छातियों में साहस ;
स्नायु में स्वतंत्रता का
मंत्र-रक्त सर्वोपरि

और ; इन्हीं
पाटल - कुटीरों में घासों की रोटियाँ
पेट भरने के लिए !
बस ।

जागो, अभागे !
जगाने आया है आज, तुम्हें भूमिकम्प !!
रक्त-मांस-हीन, कंगाल दीन ;
जग गया भाग्य-देवता तुम्हारा ।
इस डाँवाडोल स्थिति में
जग की
कहता भूडोल आज !
छेड़ो प्रमत्त वीर, पागल
नृत्य-मुक्त छन्दों में
सर्वनाश गान, महा-गान ;
बोलो — जय !
देखो, हिली नीवें पूँजीवाद की,
निपतित - सी लुण्ठित - शिर
अनपवाद !
विश्व का विधातृ आज,

लोटता धरा पर
महा-मृत्यु-वेदना से रजकण में !!
करता है मूर्ख कौन
उसको उठाने का प्रयत्न विफल ?
दम्भ यह दुःसाहस !
रोको मत ;
सर्वनाश साक्षात उपस्थित अब सामने !
जलने दो पापियों को
मदिरा-रत लोलुप,
पिशाच नर-रूपी, दुराचारियों को
होने दो दग्ध
अपनी ही प्रचण्ड पाप-ज्वाला में क्षय की !
अवसर है जगने का
तुम्हारा
सौरभ - सुवर्ण का अनुपम संयोग यही ;
खोलो नेत्र, मुद्रित चिर,
देखो, और अपनी ओर उन्मत्त ;
एक बार जागो फिर ।
लोप हो गया, समझ लो ;

जग से साम्राज्यवाद
मदान्ध, अर्थ - प्रेत ;
मिटते और बनते ही रहते राष्ट्र ;
पिसकर काल-चक्र में
निष्ठुर
दिवा - रात्रि, संध्या - प्रात, युग - वत्सर ;
होते ही रहते चूर्ण
रेणु - खण्ड ।
सभ्यता सनातन की जरा - जीर्ण,
शुष्क-पत्र के समान
भरकर फिर नूतनत्व
पाने को खड़ी है आज,
रौरव के महामृत्यु - तमसा - मय द्वार पर !!
नियम यही — ऐसा ही ।
देखता है सारा देश
उत्सुकता से आने को तुम्हारी राह !
ओ रे वीर, ओ रे धीर !
तुम्हारे पुंजीभूत रोष - वात से
लो, बुझा

प्रदीप पूँजीवाद का ;
संचित हो समग्र जाति
पूर्वीय सीमा पर दिगन्त की
लक्ष - लक्ष प्राणों का एक ध्वान ;
अब उठो, गाओ और
मृत्यु - कण्ठ से उल्लास-मय
साम्य-गान ;
बोलो, चिर-उन्नत-शिर
क्रान्ति का प्रचण्ड-कम्बु-नाद-ध्वनित
मानव की वसुधा यह
सारा श्रम श्रमिकों का ;
कृषकों के क्षेत्र हों !
पूँजी मजदूरों की !
बन्धन से मुक्त हो मानव, चिर - मानव !!
धन्य मातृदेश, धन्य
पितृदेश ; और
धन्य विश्व !
जय ! — जय !! — जय !!!

१५, जनवरी, ३४]